ज्ञानदिवाकर भगवतीगीता

प्रकाशक व लेखक

कुछ संग्रहकर्त्ता

श्री स्वामी जगदीशानन्द मरस्वती

गंगामहल मठ, मुंशी घाट,

काशी।

प्रथम बार १०००] [संवत २०१०

ज्ञानदिवाकर भगवतीगीता

[बारह कला]

लेखक—

परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री ११०८ स्वामी विशुद्धानंद गद्दी के महंत दण्डी स्वामी श्री जगदीशानन्द सरस्वती

ने संशोधन कर प्रकाशित किया।

प्रकाशक—

श्री १०८ स्वामी जगदीशानन्द सरस्वती

२०/१८ गंगामहल मठ, मुंशीघाट, काशी।

प्रथम संस्करण १०००]

[संवत् २०१०

(१) दण्डी स्वामी श्री ११०८ स्वामी विशुद्धानंद सरस्वती ।
(काशीवास २१-४-१८६६)

(२) दण्डी स्वामी श्री १०८ स्वामी शिवरामानंद सरस्वती ।

(३) दण्डी स्वामी श्री १०८ स्वामी महादेवानंद सरस्वती ।

(४) दण्डी स्वामी श्री १०८ स्वामी गोकुलानंद सरस्वती ।

(५) दण्डी स्वामी श्री १०८ स्वामी जगदीशानंद सरस्वती ।

अनुक्रमणिका

———

परमहंसपरिव्राजकाचार्य श्री १०८ दंडी स्वामी जगदीशानन्द सरस्वती
गंगामहल मठ, मुंशीघाट, काशी।

* ॐ तत्सत्परमात्मने नमः *

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ श्री सरस्वत्यै नमः ॥

॥ श्री गुरुचरणकमलेभ्यो नमो नमः ॥

मंगलाचरण

मूकम् करोति वाचालम् पङ्गुम् लंघयते गिरिं।
यत्कृपा तमहम् वन्दे परमानन्द माधवं॥

शुक्लाम् ब्रह्मविचारसार परमामाद्याम् जगत् व्यापिनीम्।
वीणा पुस्तकधारिणी मभयदाम् जाड्यान्धकारापहाम्॥
हस्तेस्फाटिक मालिकाम् विदधतीम् पद्मासने संस्थिताम्।
वन्दे ताम् परमेश्वरीम् भगवतीम् बुद्धिप्रदाम् शारदाम्॥

अशुभानि निराचष्टे तनोतिं शुभसंततिम्।
स्मृतिमात्रेण यत्पुंसां ब्रह्मतन्मङ्गलं परम्॥
अतिकल्याण रूपत्वान्नित्य कल्याण संश्रयात्।
स्मर्तृणां वरदत्वाच्च ब्रह्मतन्मङ्गलं विदुः॥
ॐ कारश्चाथ शब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा।
कंठं भित्त्वा विनियातौ तस्मान्माङ्गलिकावुभौ॥

॥ सोरठा ॥

वन्दौं गुरु गोविन्दपद अरविन्द अनन्द मय।
जहँ नाद औ विन्दरूप रसिक गुंजत अभय॥

॥ दोहा ॥

जो सद्गुरु बानी विना, वक्ता चारौ वेद।
शिष्य सुनंत जो श्रवण विन, वन्दौ उभय अभेद ॥

॥ सवैया ॥

जय सत चेतन आनँदरूप अखण्ड स्वयं परिपूर्ण परात्पर।
शुद्ध प्रशान्त सुकीर्ण अनन्त उड़ैं अणु से ब्रह्माण्ड चराचर ॥
है अविछीन आवरण विहीन जो विश्व प्रकाशक द्वैत निशाहर।
होत विज्ञान विहान नहीं जहँ सो प्रणवों परमात्म दिवाकर ॥

अंश कलादिक हीन सदा उदयास्त परे निरुपाधि निरन्तर।
नित्य उवै अथवै जेहि में द्युतिवन्त नक्षत्र दिनेश निशाकर ॥
वायु जो जल अग्नि और ज्ञात अज्ञान एकत्र रहैं निशिवासर।
जो जगदीश अधार विना थिर सो प्रणवों परमात्म दिवाकर ॥

नाम न रूप न रंग न आकृति जो सब नाम अकार को आकर।
ज्ञान विराग विलोचन वन्त चितै चष चौंधत चन्द्र दिवाकर ॥
अज्ञ उलूक लखै न कहूँ अभिमान भरे भ्रम अंध अनन्तर।

भीतर बाहेर गुप्त औ जाहिर पूरण जासु प्रकाश बराबर।
अद्भुत भानु प्रत्यक्ष उदय पर अक्ष अछक्ष लखैं न सुरौ नर ॥
व्योम दिशा विदिशा जेहि माहिं त्रिकाल परे गुण सर्व गुणाकर।
जो जगदीश सदा रस एकहिं सो प्रणवौं परमात्म दिवाकर ॥

ब्रह्म अकार औ विष्णु उकार मकार महेश को रूप कहावै ।
तापर अर्ध जो मात्र सोई सत चेतन आनँद शक्ति सुहावै ॥
आनि हकार रकार रमा औ इकार उमा श्रुति भेद बतावै ।
तापर अर्ध जो मात्र सोई जगदीश जू एकहि ब्रह्म को ध्यावै ॥

माया न ईश न जीव रहै अहंकार न तौ गुणहीं रहि जावै ।
शब्द रहै न स्पर्श रहै रस रूप रहै नहिं गन्ध सुभावै ॥
व्योम न पौन न तेज जलौ धरणी सब कारण में मिलि जावै ।
जो रस एक हमेश रहै जगदीश सो एकहि ब्रह्म को ध्यावै ॥

॥ दोहा ॥

यह अचरज जे वृद्ध भये, पढ़ि पढ़ि शास्त्र पुरान ।
तउ न भयो जगदीश यक, अक्षर से पहिचान ॥
जे सद्गुरु सत संग करि, चीन्हे अक्षर एक ।
तिन्ह हित विचरत ग्रंथ यह, सम्मत आनि अनेक ॥
कर्म उपासन बहु करै, मोक्ष न बिनु दृढ़ ज्ञान ।
जिमि सब पाक समान पर, सिद्ध न बिनहिं कृशान ॥
शिष बिचार गुरु ज्ञान किय, प्रश्नोत्तर उर धाम ।
सोइ विचरत जगदीश यहि, ज्ञान दिवाकर नाम ॥
द्वादश गीता याहि महँ, द्वादश कला उदोत ।
चक चक ही श्रुति शब्द मिलि, कबहुँ वियोग न होत ॥
जे मुमुक्षु जिज्ञासु शुचि, महा वाक्य रस पूर ।
ते लखि विकसत कमल उर, थिर मन रसिक जरूर ॥

॥ सवैया ॥

प्रान अपान प्रयोग प्रभंजन मोह महा घन मेह बिनाशै ।
धूर गरूर को दूर करै उर निर्मलता रहै पूर अकाशै ॥
अन्तष्करण अवर्ण मिटै भ्रम बुद्धि विचार सुदृष्टि प्रकाशै ।
देव दया जगदीश करै जेहि ताहिय ज्ञान दिवाकर भाशै ॥

॥ दोहा ॥

जे विषयी मति अन्ध अरु, जे उलूक अज्ञान ।
अहंकार निद्रा विवश, ते न लखत यह भान ॥
संत कमल वन विकसिहींह, ज्ञान दिवाकर देखि ।
तिन्ह सुखहित जगदीश यहि, विचरत मुदित विशेषि ॥
यक दिन शिष्य विचार गुणि, कहे ज्ञान गुरु पाहिं ।
प्रभु माया के भ्रान्त परि, शान्त होय मन नाहिं ॥
को माया को ब्रह्म पुनि, को हूँ रवँ संसार ।
पुनि यह सब कासों फुरत, कहिय सो तत्त्व विचार ॥

———

॥ ॐ तत्सत्परमात्मने नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ श्री सरस्वत्यै नमः ॥

॥ श्रीगुरुचरणकमलेभ्यो नमः ॥

ज्ञानदिवाकर भगवती गीता

❁ अथ प्रथम कला भगवती गीता प्रारम्भः ❁

—+०❁०+—

॥ दोहा ॥

ब्रह्म अकार उकार हरि, हर को रूप मकार ।
अर्धमात्र वपु भगवतिह, प्रनमो अक्षर पार ॥
जो सतचेतन मात्र नित, अकथ अनादि अनन्त ।
दश अनहद पर ऊर्ध्व है, जेहि ध्यावहिं मुनि सन्त ॥
सो चेतन परमात्मा, आद्या विद्यहि ध्याय ।
पाय सुमति सत भगवती, गीता कहौं बनाय ॥
एक समय कह व्यास सन, जन्मेजय कर जोरि ।
प्रभु सुनि माया ब्रह्म दुइ, भेद भ्रमत मति मोरि ॥
ब्रह्म सच्चिदानन्द घन, एक अनाम अरूप ।
तेहि मँह आयो द्वैत किमि, शक्ति अनन्त स्वरूप ॥

॥ चौपाई ॥

भूप प्रश्न सुनि समुझि सुभाऊ। बोले हरषि व्यास मुनिराऊ॥
धन्य परीक्षित नृप सुत ज्ञानी। भगवति भक्त कर्म मनवानी॥
कीन्हेहु प्रश्न जगत हित हेता। देत उतर तेहि सुनहु सचेता॥
ब्रह्म सच्चिदानन्दघन जोई। केवल अनिर्वाच्य पद सोई॥
पुरुषन नारिन खण्ड न कोई। आप सहज फुरि चेतन होई॥
भेद न तेहि चेतनता माहीं। भानु प्रभा जिमि अन्तर नाहीं॥
शक्तिमान अरु शक्ति अनूपा। गिरा अर्थ जिमि जल अलिरूपा॥
चेतनता सोइ ईश कहाया। सोइ आद्या प्रकृतिश्वरि माया॥
सोइ त्रिदेव सोइ देवि अकारा। सोइ संसार त्रिविध व्योहारा॥
भगवत भगवति भेदन कैसे। पवन हवा घट गागरि जैसे॥

॥ दोहा ॥

माया ईश्वर कहन मँह, नारि पुरुष अस होइ।
यह जुग इन्द्री भेद वह, भेद रहित यक सोइ॥
श्रीमुख आद्या तत्व निज, कहे हिमाचल पाहिं।
सो तुम-सन अब कहत जेहि, भ्रम न रहै मन माहिं॥

॥ चौपाई ॥

शक्ति सच्चिदानन्द स्वरूपिनि। निज इच्छा लीला बहु रूपिनि॥
नित्य अनादि अजा अविनाशिनि। आदिशक्ति मणि द्वीप निवासिनि॥
विधि हरि शम्भु जननि सोइ माया। भक्त न हेतु धरति बहु काया॥

तेहि तप दक्ष प्रजापति कीन्हें। सुता होन हित तेहि वर दीन्हें ॥
ताते शक्ति सती तन धारी। दक्षसुता भइ शम्भु पियारी ॥
सो यकवार दक्षमख जाई। पति अपमान निरखि दुख पाई ॥
तव तन यज्ञ अनल मँह जारा। हाहाकार भयो संसारा ॥
शिव गण जाइ कीन्ह मख भंगा। लिय हर काढ़ि सती कर अङ्गा ॥
सती सती रटि निपट वेहाला। सव जग शम्भु भ्रमे वहुकाला ॥
लखि निज वाणन काटि मुरारी। दीन सतीअंग जँह तँह डारी ॥
ते वहु भये देवि अस्थाना। शिव युत नाम रूप गुण नाना ॥
तव शिव शक्ति रूप चित लाई। वैठ एकान्त समाधि लगाई ॥
तव जग जीव चराचर जेते। भे सौभाग्य रहित सव तेते ॥
भयो विश्व सव शक्ति विहीना। उदासीन अति दीन मलीना ॥
ग्रह सुर वेद सुमारग भूले। भये परस्पर सव प्रतिकूले ॥
तारक असुर भयउ तेहि काला। तप करि जित्यो सकल दिगपाला ॥

॥ दोहा ॥

हारि समर मँह अमर सव, जाइ कहे विधि पाहिं।
कह अज शिव शुक्रज सुवन, मारि सकिहि खल काहिं ॥

॥ चौपाई ॥

सुनत अधिक संके सव कोई। विनतिय किमि शिवके सुत होई ॥
तव सव गये रमापति पाहीं। कंहे जो कछु चिन्ता मन माहीं ॥
कह प्रभु तुम कत शोचत अहहू। जगत जननि शरणागत गहहू ॥

जो परब्रह्म फुरने चिद्रूपा। अकथ अनादि अनन्त अनूपा॥
श्रीमणि द्वीप निवासिनि जोई। सदा सर्वविधि समरथ सोई॥
प्रणत कल्पतरु नाम उदारा। सोई साधिहि सब काम तुम्हारा॥
आद्या की अस्तुति अब करहूँ। तेहि विश्वास हृदय दृढ़ धरहूँ॥
अस कहि सकल सुरन लै साथा। गए हिमाचल पर श्रीनाथा॥
करि करि तप जप योग सुसेवा। शक्तिहिं भजन लगे सब देवा॥
यहि विधि ध्यावत बहु दिन गयऊ। चैत्र सुदी नौमी भृगु भयऊ॥
तेहि दिन जानि समय अनयासा। उतरेउ नभ सन एक प्रकासा॥
कोटि दिवाकर दामिनि रूपा। तेज पुंज अति दिव्य अनूपा॥
कोटि चन्द्र सम शीतलताई। कोटि अग्नि सम लसत ललाई॥
बहुत न ऊँच न नीचहिं होई। लागेउ अमन मध्य मँह सोई॥
अद्भुत तेज अनादि अनन्ता। कर भुज अङ्ग रहित द्युतिवन्ता॥
नहिं वह नारि न पुरुष न खण्डा। जगमगात यक तेज प्रचण्डा॥

॥ दोहा ॥

देह धरे चहुँदिशि निगम, अस्तुति करत स्वबैन।
अन्तरिच्छ मँह लखि सभय, मूँदि लिये सब नैन॥
तेहि छण मँह सोइ तेज सब, समिटि भयो तिय रूप।
श्यामा सुन्दरि मन हरनि, नख शिख अङ्ग अनूप॥

॥ छन्द भुजंग प्रयात् ॥

जबै देवता खोलि कै नैन जोहे। खड़ीसौंह दिव्याङ्गना देखि मोहे॥

प्रभा पुञ्ज गौराङ्ग श्री माननी है। हँसत् कोटि चन्द्र प्रसन्नाननी है ॥
अलङ्कार शृङ्गार साजे कुमारी। लजै अग्नि ज्वाला लसै लाल सारी ॥
चहूँधा लगी कोर कोरैं किनारी। चमकैं चितै चञ्चला तेज हारी ॥
जड़ी रत्न वेनी पड़ी पीठि चोटी। मनो नागिनी केदली पत्र लोटी ॥
भरी माँग मुक्तावली फूल गाँथे। टँके दिव्य माणिक्य के क्रीट माथे ॥
सु सिन्दूर वेंदी वड़ी वन्दि शोभा। चितै भाल शरदाष्टमी चन्द लोभा ॥
चढ़ी बङ्क भौहैं बड़ी आँख सोहैं। मृगी खंजनी मीन राजीव मोहैं ॥
महा स्वर्ण वैदूर्य की कर्ण ढारैं। सुसौन्दर्य ऐश्वर्य से सूर्य हारैं ॥
बड़ी नत्थ मुक्ता जड़ी चारु नासा। सुविम्बोष्ट दन्तावली मंजु हासा ॥
गरे मल्लिका मालती फूल जाला। गुहे हार हीरावली लाल माला ॥
कसे कंचुकी द्वै उरोजै बिराजैं। उड़ै अर्गजा अङ्ग में भृङ्ग भ्राजैं ॥
भुजा चारि में अस्त्रशस्त्रादिराजैं। सुबाजू वजुल्ला लगे लाल लाजैं ॥
कड़ा कङ्कणा स्वर्ण चूड़ी सुराजं। अगेला पछेला छला छाप छाजैं ॥
बँधी किंकिणी लङ्क कोंछि सुसाजैं। कड़ा औ छड़ा घुँघुरू मंजु वाजैं ॥
अलङ्कारही ते कढ़ै वेद बानी। इहै आदि माया महादेव जानी ॥
त्रिदेवेश्वरी मूर्ति धारै त्रिनैना। खड़ी सौंह देखे भयो चित्त चैना ॥
महाँ मोद ते बोलि आवै न वैना। विलोकैं भरे प्रेम के नीर नैना ॥

॥ सोरठा ॥

पुनि सब सुर धरि धीर जोरि करन वन्दत चरन।
गद गद गिरा गंभीर लगे सकल अस्तुति करन ॥

॥ छन्द भुजंग प्रयात ॥

नमो मातु देवी महादेवि आद्या। शिवाशक्ति भद्रा सुविद्या अनाद्या॥
त्रिदेवेश्वरी ज्योति तपसज्वलन्ती। त्रिकालात्मिका मूर्ति वैरोचयन्ती॥
नमो वाक्य रूपी बदै वेद जाको। घने रूपिणी जानते अज्ञताको॥
सदा सर्वदा सर्व सामर्थ सोई। हमारे हितै कामदा धेनु होई॥
नमो अम्बिका दक्ष कन्या सती है। महालक्ष्मी पार्वती सरस्वती है॥
महाकाली दुर्गा जयंती धृती है। वषट्कार स्वाहा स्वधा श्रीमती है॥
नमो सूक्ष्म स्थूल बहुरूपिणी है। तू सूत्रात्म व्याकर्ण की रूपिणी है॥
विना जासु जाने सही विश्व भासै। यथा रज्जुमे सर्प अज्ञान त्रासै॥
नमो जाहि जानै हृदै भ्रान्ति भागै। मिटै स्वप्न जैसे जबै जीव जागै॥
त्वमोङ्कार ह्रीङ्कार मंत्रात्मिका है। विभुं व्यापिणी साक्षि सर्वात्मिका है॥
नमो ब्रह्म गायत्रि सावित्रि देवी। स्वयं सिद्धि सर्वेश्वरी सर्वसेवी॥
दयामूर्ति मोपै द्रवै दीन जानी। नमस्ते नमस्ते नमस्ते भवानी॥

॥ छप्पै छन्द ॥

जय सत चित आनन्द अजा अजयां अविनासिनी।
जय गुणवती अनन्त शक्ति मणिद्वीप निवासिनी॥
जय निज चेतन प्रकृति अखिल ब्रह्माण्ड प्रकाशिनी।
जय जगदीश्वरि अम्ब जयति सब घट घट वासिनी॥
जय निज इच्छा बहु तनु धरनि विश्वकरनि पालनि हरनि।
तेहि नमत शरण बलदेव जन जय जय जय अवढर ढरनि॥

॥ दोहा ॥

यहि विधि सुरगण विनय सुनि, जगत जननि महरानि ।
पिकवचनी बोली वचन, मधुर कृपाऽमृत सानि ॥

॥ चौपाई ॥

अमर इहाँ केहि कारण आये । किमि हम कहँ बड़ि विनय सुनाये ॥
परेहु कवन दुख का तुम चहहू । तजि भय लाज मरम सब कहहू ॥
परम प्रसन्न जननि कहँ जानी । बोले विबुध विनय मृदु बानी ॥
तुम सर्वज्ञ सर्व जग स्वामिनी । सर्व साखि सब अन्तर्यामिनि ॥
पूँछति मातु हमहिं जन जानी । ताते अब कछु कहत बखानी ॥
तारक असुर भयो जग जोई । सन्तत हमहिं देत दुख सोई ॥
तासु मरन शिव सुत के हाथा । कीन्ह नियत विधि त्रिभुवन नाथा ॥
पै शिव के पत्नी अब नाहीं । यह चिन्ता हमरे मन माहीं ॥
सुनि सुर विनय मनोरथ जानी । चन्दवदनि बोली वर बानी ॥
शक्ति हमारि गौरि यक जोई । होइहि हिमगिरि कन्या सोई ॥
तेहि तुम दीन्हेहु शिवहि विवाही । सो तुम्हार सब कार्य निबाही ॥
करत हिमाचल भक्ति हमारी । ताते हम तेहि होब कुमारी ॥
सुनि अस वचन कृपा रस साने । गद गद गिरा गिरीश बखाने ॥
भगवति प्यार करति तुम जेही । देति बनाय बहुत बड़ तेही ॥
कहँ मैं जड़ गिरि उपल सरूपा । कहँ तुम सत चित आनन्दरूपा ॥
श्रुति त्रिदेव जग जननी जोई । अहो भाग्य मम सुता सो होई ॥

॥ दोहा ॥

भक्त वत्सला भगवती, मुदित जो मोपर होहु।
तौनिज सहज स्वरूप कर, तत्व कहहु करि छोहु॥

॥ चौपाई ॥

सुनि हिमवान वचन हरषानी। बोली अम्ब अमिय सम बानी॥
हे त्रिदेव सुर मुनि गिरि राजा। सुनहु वचन मम सहित समाजा॥
जेहि सुनि गुनि मति होइ अनूपा। जीव पाव निज सहज स्वरूपा॥
हमहिं रही यक पूर्वहि माहीं। दूसर अपर रहा कछु नाहीं॥
रहे न त्रयगुण मय अहंकारा। रहे न पंच विषय व्योहारा॥
रहे न पाँचौ भूत विकारा। रहे न सूक्ष्म थूल अकारा॥
रहे न रवि शशि उडुगण दामिनि। रहे न अग्निज्योति दिन यामिनि॥
रहे न रूप रेख रंग कोई। हम यक रही विलक्षण सोई॥

॥ दोहा ॥

आत्मरूप चित शक्ति कर, है सोइ जाननहार।
तासु नाम परब्रह्म जो, अगुण अलख अविकार॥
तेहि यक चेतन शक्ति जो, फुरत आप महँ आप।
सो माया सत असत पर, व्यापक सदा अमाप॥
अग्नि उष्णता रवि प्रभा, चन्द्र ज्योति अनुरूप।
सो हमरेहि सँग प्रगट भइ, नित्य अभिन्न स्वरूप॥

॥ चौपाई ॥

तेहि महँ महाँ प्रलय के माहीं । काल कर्म गुण जीव समाहीं ॥
जिमि सोवत गुण अहमित माहीं । सब व्योहार लीन होइ जाहीं ॥
तिमि चैतन्य सिन्धु यक माहीं । भव तरंग बहु फुरहिं समाहीं ॥
शान्त शुद्ध परब्रह्म अनूपा । अलख सिन्धु वेला अनुरूपा ॥
फुरि चैतन्य बहिर्मुख होई । ईश्वर शक्ति कहावत सोई ॥
त्रि देवादि सब विश्व प्रयन्ता । रूप नाम व्यवहार अनन्ता ॥
ताहि वेद विद कहहिं अविद्या । अन्तर्मुख भये नाम सुविद्या ॥
तेहि कोउ प्रकृति पुरुष कोउ कहई । कोउ तप कोउ तम भापत अहई ॥
कोउ प्रधान कोउ जड़ कोउ ज्ञाना । माया के बहु नाम बखाना ॥
चेतन चेतन नाम अभेदा । अग्नि उष्णता इव कह वेदा ॥
शक्तिमान अव्याकृत जोई । अरु अव्यक्त माया युत सोई ॥
सब कारण कर कारण रूपा । सब तत्वन्ह कर आदि अनूपा ॥
सर्व कर्म साक्षी अविकारा । इच्छा ज्ञान कृपा आधारा ॥
शान्त सच्चिदानन्द चिद्रूपा । फुरेउ आदि ह्रीङ्कार स्वरूपा ॥
पुनि नभ पवन अनल जल धरणी । क्रम ते तत्व भये यह वरणी ॥
शब्द स्पर्श रूप रस गन्धा । पंच तत्व मात्रा सम्बन्धा ॥

॥ दोहा ॥

नभ गुण शब्द समीर के, शब्द परस गुण दोय ।
तेज त्रिगुण तेई रूप युत, रस युत चौगुन तोय ॥

अवनि गन्ध युत पंच गुण, भूत विषय कहि दीन।
अब सूक्ष्मऽस्थूल तन, क्रम ते सुनहु प्रवीन॥

॥ चौपाई ॥

जो अव्यक्त गुणात्मक माया। कारण तन सोइ जग उपजाया॥
पंच विषय शब्दादिक जोई। सूक्ष्म लिंग देह है सोई॥
विषय पंचभूतात्मक देही। थूल विराट कहत मुनि तेही॥
पंच भूत विषयन्ह संयोगा। इन्द्री होहिं करहिं निज भोगा॥
ज्ञानेन्द्रिन्ह के मिलन प्रभाऊ। उपजहिं अंतःकरण सुभाऊ॥
वृत्ति भेद सन चारि प्रकारा। होत सो नाम कहौं करि न्यारा॥
जब संकल्प विकल्पहिं करई। तब तेहि वृत्ति नाम मन परई॥
करि विचार सब संशय हीना। निश्चय करै सो बुद्धि प्रवीना॥
अनुसन्धान रूप चित होई। अहंकार किय अहमित सोई॥
अन्तःकर्ण कहावहिं चारी। अपर तत्व गति कहौं विचारी॥

॥ दोहा ॥

पुनि तिन्ह पाँचौ भूत के, रज गुण अंश प्रभाव।
पंच कर्म इन्द्रिय प्रगटि, निज निज करहिं सुभाव॥
तिन्हहिं मिले ते पंच विधि, होत पवन तन माहिं।
नाम ठाम तिन्हके सकल, वरणि कहौं तुम पाहिं॥
हिय महँ प्रान अपान गुद, नाभी माहिं समान।
रहत उदान सुकंठ महँ, सब तन पूरित व्यान॥

दश इन्द्रिय पाँचौ पवन, मन बुधि सत्रह युक्त ।
सूक्ष्म तन हम सर्वमय, जानत जीवन मुक्त ॥

॥ चौपाई ॥

यहि तन माहिं प्रकृति जो अहई । तेहि दुइ भेद सुनहु श्रुति कहई ॥
सत्वात्मिका कहावति माया । गुण युत नाम अविद्या पाया ॥
निज आश्रय रचा कर जोई । माया नाम कहावति सोई ॥
तेहि महँ परमात्मा कर जोई । परत झलक है ईश्वर सोई ॥
स्वाश्रय ब्रह्म तत्व जो जाना । सो सर्वज्ञ रूप भगवाना ॥
परत जो झलक अविद्या माहीं । मलिन भाव तेहि जीव कहाहीं ॥
जो भ्रम भेद सकल दुख भागी । होत त्रिगुण वश भूलि अभागी ॥
असत अविद्या ही के कारण । करत ईश जिव त्रय तनु धारण ॥

॥ दोहा ॥

तीनि देह अभिमान ते, जीव लहत त्रय नाम ।
त्रिगुण अवस्था तीन महँ, विचरत आठौ याम ॥

॥ चौपाई ॥

फुरत त्रिगुण युत जो अहंकारा । तहाँ तमोगुण कर अधिकारा ॥
कहत सुषुप्ति अवस्था तेही । रुद्रदेव सोइ कारण देही ॥
तेहि अभिमान जीव कर जोई । ताते प्राज्ञ कहावत सोई ॥
पंच विषय शब्दादिक जेते । मन बुधि चित अहंकार समेते ॥

विष्णुदेव सत गुण बहु होई। जानहु स्वप्न अवस्था सोई।
सोइ सूक्ष्म तन कर अभिमानी। तेज समान जीव कर जानी।
पंच विषय शब्दादिक जेते। पंच भूत गगनादि समेते।
बाहेर भीतर इन्द्री जोई। मिलि अस्थूल देह यक होई।
ब्रह्मदेव रज गुण अधिकारा। जाग्रत दशा थूल व्यवहारा।
व्है तेहि स्थूल देह अभिमानी। विश्व जीव कर नाम बखानी।
यहि विधि नाम ईश्वरहु केरे। होत त्रिविध माया के प्रेरे।
ईश्वर सूत्र विराट कहाया। सृजत भरत हर विश्व निकाया॥
सब जग सहित चराचर झारी। पूरण माया शक्ति हमारी॥
पै परमार्थ दृष्टि सन सोई। माया हमंसन प्रथक न दोई॥
बुधि भ्रम ते अज्ञानिन्ह केरे। नाम रूप व्यवहार घनेरे॥
वास्तव माहिं तत्व सोइ एका। जल तरंग जिमि एक अनेका॥

॥ दोहा ॥

सो हम माया विश्व रचि, सब महँ करति प्रवेश।
सर्वभूत गुण दोष कर, हम महँ कछुक न लेश॥
भीतर बाहेर गगन जिमि, पूरण एक समान।
पै सब महँ अनमिल अमल, तिमि हम शुद्ध महान॥

॥ चौपाई ॥

बुध्यादिक सन कर्म जे होहीं। तेहि लखि अज्ञ लगावहीं मोहीं॥
जे विशुद्ध मति आतम ज्ञानी। ते मोहिं भजहिं अकर्ता जानी॥

हम महँ विषय न परसत कैसे। नभ कहँ धूम धूरि तम जैसे॥
पै अज्ञान माया के भेदा। ईश जीव विलगावहिं वेदा॥
घट आकाश महा आकाशा। पात्र भेद सन जिमि दुइ भासा॥
जिमि परमात्म जीव यक अहहीं। बुद्धि भेद लखि कै दुइ कहहीं॥
एकहि माया के भ्रमताई। भासत ईश जीव बहुताई॥
पर स्वभाव सन एकहि कैसे। बहु घट कोटि एक रवि जैसे॥
जीव भेद कर हेतु अविद्या। ईश भेद कर कारण विद्या॥
सो सब ओत प्रोत हम माहीं। ईश्वर जीव हमहिं सब आहीं॥
विधि हरिहर सुर शक्ति समेता। जीव चराचर सब जग जेता॥
कहिय सुनिय देखिय व्यवहारा। जहँ लग मन बुधि करिय विचारा॥
भीतर बाहेर सब हम आहीं। हम सन इतर वस्तु कछु नाहीं॥
हम सन इतर वस्तु जो भासा। सो जानहु भ्रम स्वप्न तमासा॥
यथा भेद से रजु महँ व्याला। भास सीप महँ रजत विशाला॥
तिमि ईशादि रूप के माहीं। भासति हमहुँ यथारथ नाहीं॥

॥ दोहा ॥

देवि वचन सुनि हिम अचल, कह्यो कि जानेउँ तोहिं।
आपन रूप विराट अब, मातु देखावहु मोहिं॥
यहि विधि हिमगिरि वचन सुनि, विधि हरिहर सुरवृन्द।
लगे सराहन तिन्हहिं सब, पूरित परमानन्द॥

॥ सोरठा ॥

सब कर सम्मत जानि भक्त मनोरथ सिधि करनि।
भगवति सब गुण खानि कीन्ह्यो प्रगट विराट तन ॥

॥ छन्द नाराच ॥

सुब्रह्मलोक शीश जासु चन्द्र सूर्य नैन हैं।
कृतान्त दन्त काल भ्रू मुखाग्नि वेद वैन हैं ॥
दशौ दिशा सुकर्ण घ्राण अश्विनी कुमार हैं।
जलेश जीह लाज लोभ ओंठ के अकार हैं ॥
दिगेश बाहु विश्य होय कोप जो समुद्र है।
पताल पाँउ मध्य के अनेक लोक उद्र है ॥
सबै पहार अस्थि त्यों नदी नसैं अपार हैं।
दसाष्ट भार वृक्ष रोम मेघ शीश वार हैं ॥
अनन्त ज्वाल माल से प्रदीप्त अंग अंग हैं।
चबात जात लोक के समूह एक संग हैं ॥
जो नयन के पलानिते झरैं घने अंगार हैं।
तौ सूर्य विज्जु व्योम ते छुटैं ज्यों एकतार हैं ॥
कहूँ सहस्र हीं सहस्र सर्व अंग होत हैं।
कहूँ तो कोटि अग्नि से ज्वलंत एक जोत हैं ॥
दलै जो दंत क्रोध से तो होत शब्द घोर हैं।
महा कराल पूरिगो स्वरूप सर्व ओर हैं ॥

॥ दोहा ॥

देखि भयङ्कर रूप सुर, हाहाकार पुकारि ।
भये सभय मूर्छित विकल, पूर्व स्वरूप विसारि ॥
रहे जे श्रुति अस्तुति करत, ते लखि सुरन्ह अचेत ।
लगे जगावन अव तिन्हहिं, तव सव भये सचेत ॥
प्रेम सहित गद्गद गिरा, कहन लगे सव कोइ ।
कहाँ गई जगदम्ब वह, किधौं उहै यह होइ ॥

॥ तोटक छन्द ॥

कहँ गौरि रही द्युति दामिनी सी । कहँ श्याम प्रलय घन यामिनि सी ॥
कहँ सो मुखचन्द से सुन्दर है । कहँ ये जनु भूधर कन्दर है ॥
कहँ दन्त सुपानन खाति रही । कहँ लोकन्ह जाति चवाति सही ॥
कहँ ओंठ सुरंग हँसी उमही । कहँ क्रोध से रक्त कि धार वही ॥
कहँ दृष्टि कृपाऽमृत वृष्टि करै । कहँ कोरन्ह पावक ज्वाल झरै ॥
कहँ पंकज से पग पाँणि रहे । कहँ घोर कठोरन्ह अस्त्र गहे ॥
कहँ जूट वँधी वेनियाँ हलकैं । कहँ छूटि जटा छिटकी अलकैं ॥
कहँ मोतिन हीरन हार परे । कहँ रुण्ड औ मुण्ड के माल गरे ॥
कहँ भूषण कंचन रत्न घने । कहँ ये ब्रह्माण्डन के गहने ॥
जगदीश मनोहर रूप कहाँ । यह गात विशाल कराल महाँ ॥

॥ सोरठा ॥

अस कहि उर धरि धीर तन सकम्प सब देवगन ।
गद्गद गिरा गम्भीर लगे सकल अस्तुति करन ॥

॥ चौपाई ॥

अम्ब निरखि यह रूप तिहारो । बहुत डरे हम कोप निवारो ॥
निज प्रभाव जब तुमहिं न जाना । हम पामर का करहिं बखाना ॥
जयति प्रणव ह्रींकार स्वरूपिनि । श्रुति सिद्धान्त अनाम अरूपिनि ॥
चिदाकाश तुहि भुवने शानी । तुमहिं प्रणाम कर्म मन बानी ॥
रवि शशि अग्नि नखत गण दामिनि । जेहिते होहिं समय दिन यामिनि ॥
सुर नर असुर नाग गन्धर्वा । जेहि ते प्रगट चराचर सर्वा ॥
जेहि ते फुरहि रूप गुण नामा । तेहि सर्वात्महि करहिं प्रनामा ॥
अम्बर अनिल अनल जल धरणी । खानि योनि जहँ लग श्रुति बरणी ॥
गिरि नद सरित सिन्धु तरु नाना । औषध रस सब करम विधाना ॥
जेहि ते सकल सृष्टि गुण ग्रामा । तेहि सर्वात्महि करहिं प्रणामा ॥
सब दिशि विदिशि सदा सब जागा । व्यापक रहित जो राग विरागा ॥
सत चित आनन्द मात्र अनूपा । नौमि परात्पर शक्ति स्वरूपा ॥

॥ दोहा ॥

आपन दारुण रूप यह, गुप्त करहु जगदम्ब ।
दरशावहु सोइ सौम्य तनु, जो भगतन्ह अवलम्ब ॥

देव वचन सुनि देवि पुनि, होइ गइ सुन्दर रूप।
चन्दवदनि बोली वचन, मधुर सुधा अनुरूप॥
देखौ रूप हमार यह, दुर्लभ लखत न कोय।
सोइ देखत जो तुमहि अस, ज्ञानी जन मम होय॥
ज्ञानिहि अपि मेरी कृपा, नहिं दुर्लभ कछु तात।
ज्ञान भये जीवात्मा, परमात्मा ह्वै जात॥

॥ चौपाई ॥

सुनि हिमवान कहेउ कर जोरी। देवि और विनती यक मोरी॥
जाके निर्मल ज्ञान न होई। तुम कहँ चीन्ही सकै किमि सोई॥
तात प्रतीति न जेहि विन जाने। तेहि हित श्रुति हठयोग बखाने॥
थोरेहि माहिं कहौं तोहिं सोई। जेहि साधे प्रतीति दृढ़ होई॥
प्रथम सुकर्म सुभक्ति दृढ़ाई। लेइ विषय सन मन अलगाई॥
पुनि साधै हठयोग सुज्ञानी। अष्ट अंग तेहि कहौं बखानी॥

॥ दोहा ॥

प्रथम अंग यम नियम पुनि, आसन प्राणायाम।
प्रत्याहारहु धारणा, ध्यान समाधी नाम॥

॥ चौपाई ॥

सत्य आदि दश यम श्रुति गावहिं। शौच आदि दश नियम कहावहिं॥
लख चौरासी योनि हैं जेते। सकल ब्रह्म योगासन तेते॥
तिन्ह महँ वर आसन चौरासी। लीन्ह निकासि शम्भु अविनासी॥

पुनि तिन्ह माहिं मुख्य त्रय आसन । सहजहि सिंह पदुम सिद्धासन
अव वरणत हौं प्राणायामा । षट चक्रन के सुनिये नामा
यक अधार पुनि स्वाधिष्ठाना । अरु मनि पूरक अनहद जाना
अरु विशुद्ध अज्ञा इत्यादि । यह षट चक्रन्ह शोधै आदी
सोहं सोहं शब्द उचारा । पूरक महँ जप षोडश वारा
कुम्भक महँ चौंसठ परमानौ । रेचक महँ पुनि बत्तिस जानौ
जस जस उर महँ ठहरै पौना । तस तस मंत्र बढ़ावै मौना
होत जे कुम्भक आठ प्रकारा । तेहि गुण नाम कहौं करि न्यारा

॥ छन्द चौबोला ॥

यक सूरय भेदनी कहावै पूरै पिंगल वाता ।
रेचै बायें रोकि कछुक सो हरै वायु रुज गाता ॥
दूसर नाम उज्याई पवनहिं रोकि धरै उर माहीं ।
करै इड़ाते रेचक ताके कफ रुज उपजै नाहीं ॥
तीसर शीत कारिणी कहिये घ्राण ते पियै वतासा ।
शीशी कहि पुनि मुखसे छोंड़ै जीतै भूँख पियासा ॥
चौथ शीतली कुंभक पूरै जीह वदन ते आना ।
नाक विषे तेहि रोकि निवारै करै वृद्ध ते ज्वाना ॥
पंचई भ्राखिक नाम स्वास ते भरै तजै अतुराई ।
थकै करै रवि चन्द्र ठहरि कै त्रिविध रोग मिटिजाई ॥
छठी भ्रामरी भृंग नाद जो भरै श्वास ते वायू ।
ताहि शब्द ते रेचै तव मन थकै बढ़ै बल आयू ॥

सतईं मूर्छा नामहिं सुमिरै श्वास उसास हमेशा ।
ज्ञान प्रकाशै भव भय नाशै रहै न उदर कलेशा ॥
अठइं केवल होत नाम मय सर्वोपर रमनीया ।
सो कुंभक है सबसे उत्तम अगम अनिर्वचनीया ॥

॥ दोहा ॥

पंचम प्रत्याहार गुणि, मनहि करै वश माहिं ।
छठौं धारणा मंत्र युत, धारै तत्वन काहिं ॥
सप्तम अंग जो ध्यान है, करै रूप कर ध्यान ।
पुनि अच्चर परमात्महिं, ध्याय लहै कल्यान ॥
अष्टम नाम समाधि जो, जीव ब्रह्म मिलि जाइ ।
अष्ट अंग हठयोग के, दीन्ह्यो मुख्य बताइ ॥

॥ चौबोला छन्द ॥ पँचमुद्रा वर्णन ॥

प्रथम खेचरी बसत बदन महँ तासों जीभ बढ़ावै ।
द्वितीय भूचरी बस नासा महँ प्राण अपान मिलावै ॥
तृतीय चाचरी मुद्रा कहिये बसत दृगन महँ सोई ।
नासा अग्र दृष्टि धरि देखै बहु बिधि अचरज जोई ॥
चौथ गोचरी बसत श्रवण महँ ज्ञान सुरति यक होई ।
ताते अनहद शब्द परत सुनि जानै विरला कोई ॥
पंचम नाम उन्मनी मुद्रा दशम द्वार ब्रह्माण्डा ।
तहाँ बासना रहित होति अपि सिद्धि समाधि अखण्डा ॥

॥ दोहा ॥

महाँ बन्ध अरु मूल पुनि, जालंधर उज्यान ।
चारो बन्धन साधि मुनि, लहत ज्ञान निर्वान ॥

॥ चौपाई ॥

पुनि कर जोरि कहेउ हिमवाना । मैं तब कृपा तत्त्व तव जाना
सतचित आनँद रूप तुम्हारा । अकथ अनादि अनन्त अपारा
सोइ समुद्र इव नित तेहि माहीं । सृष्टि लहरि बहु फुरहिं समाहीं
तुम ते तुमहिं अपर कोउ नाहीं । तुमहिं सर्व अद्वैत सदाहीं
तव हित मुनि साधहिं हठयोगा । तजि षट दोष विषय मन भोगा
तउ तव रूप न जानहिं तेऊ । तुम्हरी कृपा जान केउ केऊ
तव मायावश जीव भुलाना । गिरि स्वरूप सन भ्रमत अयाना
कहँहु कृपा करि सहज उपाई । जेहि साधे तुम महँ मिलि जाई
शैल वचन सुनि कह जगदम्बा । साधन सुगम नाम अवलम्बा
प्रातहिं जागि शान्त मन करई । बैठि एकान्त ध्यान मम धरई

॥ छन्द नाराच ॥

हकार को रकार में रकार को इकार में ।
इकार को मिलाय अर्धमात्र के अकार में ॥
यही प्रकार योग जो करै सदा विचार में ।
मिलै तो बिन्दु ह्वै अखण्ड रूप निर्विकार में ॥

कि तो अ को उकार में उकार को मकार में ।
मकार को मिलाय अर्धमात्र के अधार में ॥
सो बिन्दु में चैतन्यता मिलाय कै विचार में ।
कृतार्थ होत लीन है अखण्ड निर्विकार में ॥

॥ दोहा ॥

सब योगन्ह कर योग यह, सब ज्ञानन्ह कर ज्ञान ।
सब वेदन कर सार यह, तुम्हसन कीन्ह बखान ॥
प्रणव धनुष ह्रीङ्कार ज्या, साजि उपासन बान ।
वेधै अंतह लक्ष सोइ, जग बिजई बलवान ॥

॥ सवैया ॥

मैं न बसौं मणिद्वीप न गोपुर मैं न त्रिदेव के लोकन माहीं ।
मैं न बसौं गिरि मेरु न मन्दर बिंध्य हिमाचल में हम नाहीं ॥
ऊर्ध्व न अर्ध न नीचन तीरथ ये थल भेद मती हित आहीं ।
हौं निज ज्ञानिन्ह के हिय में जगदीशानन्द बसौं सब ठौर सदाहीं ॥

॥ दोहा ॥

हम न वसति वैकुंठ महँ, नहिं विधि पुर कैलास ।
हम निज ज्ञानी हिय कमल, करति निरंतर बास ॥
जो मम ज्ञानी भक्त कहँ, पूजत करि सनमान ।
तेहि पर होति प्रसन्न हम, वहि मोहिं भेद न आन ॥

॥ चौपाई ॥

सतचित आनँदरूप हमारा। तेहि महँ जेहि मन मिलेउ उदारा।
सो मय रूप भयउ कुल पावन। जननि कृतारथ सुयश सुहावन।
धन्य सो देश धन्य सो ठाऊँ। ज्ञानी केर परत जहँ पाऊँ।
ज्ञानिहि ते विधि हरिहर देवा। ब्रह्मरूप कोउ जान न भेवा।
ज्ञानहि ते नर होत महाना। ज्ञानहिं ते सब विधि कल्याना।
परमात्मा सूर्यवत जोई। तासु प्रकाश ज्ञान घन सोई।
एकहि ज्ञेय ज्ञान अरु ज्ञानी। अग्नि ज्वाल उष्णता बखानी।
जो अद्वैत एकरस कोई। आदि अन्त मधि पूरण सोई।
तेहि तजि अपर द्वैत जो भासै। गुनि भ्रम असत न तेहि विश्वासै।
परमात्मा तत्त्व यक साँचा। सोउ तेहि रूप जो तेहि महँ राँचा।

॥ दोहा ॥

यहि विधि हिमगिरि आदि सन, करि निज तत्त्व बखान।
सबहि भक्ति दै भगवती, ह्वै गइ अन्तर ध्यान ॥
सोइ गिरिजा ह्वै शंभुतिय, प्रगटे प्रबल कुमार।
जो षटमुख कीन्हीं समर, तारक असुर सँहार ॥
जेहि उर संतत भगवती, गीता कर अभ्यास।
तेहि 'जगदीशानन्द' होइ कहुँ, जन्म मरन भ्रम त्रास ॥

॥ श्रीज्ञानदिवाकरे श्रीजगदीशानन्द विरचिते देवीभागवतमते भगवती गीता प्रथमो कला शुभम् भूयात् ॥

❀ अथ पराशरगीता द्वितीय कला प्रारम्भः ❀

—+○❀○+—

॥ दोहा ॥

यक दिन बूझे जनक नृप, सुमुनि पराशर पाहिं।
प्रभु जीवन कल्याण हित, का दुहुँ लोकन माहिं॥
दुर्लभ नर तन पाय तेहि, कहा जानिबे योग।
कहहु कृपा करि नाथ जेहि, मिटहिं सकल भवरोग॥

॥ चौपाई ॥

सुनि स प्रेम मथिला पति बानी। बोले विहँसि पराशर ज्ञानी॥
तुम सुजान जड़ जीवन हेता। प्रश्न कियेहु सो सुनहु सचेता॥
धर्महि श्रेय दुहूँपुर माहीं। धर्म किये अघ दुःख नशाहीं॥
धर्महि ते नर पावन होई। लहत स्वर्ग सुख सेवित सोई॥
आश्रम प्रवृत धर्म महँ रहहीं। धर्महि श्रेष्ठ सुबुध सब कहहीं॥
जीव लहहिं गति चारि प्रकारा। सुनि क्रम ते नृप करहु विचारा॥
परहिं नरक अधरम रत जेते। लहहिं योनि विहंगादिक तेते॥
निवसहिं स्वर्ग धर्मरत प्रानी। लहहिं दिव्य वपु सब सुख खानी॥
पाप पुण्य सम नर तन धरई। पुनि शुभ अशुभ कर्म सो करई॥
पाप पुण्य जेहि जब क्षय होई। तब जन लहत मोक्षपद सोई॥
होइ पूर्व करणी जेहि जैसी। गति भल पोच मिलै तेहि तैसी॥

पुण्य अपुण्य प्रबल जोइ होई। भोगन परत प्रथम फल सोई॥
शेष कर्म फल भोगत पीछे। नशत न ज्ञान स्वर्ग बिनु तीछे॥
अस गुनि जो बुध कर अघ धोखे। धोवत तुरत पुण्य जल चोखे॥
पाप अजानत के छुटि जाहीं। जानि किये अघ छूटत नाहीं॥
ताते करिय सदा शुभ करणी। यह सामान्य धरम हम वरणी॥

॥ दोहा ॥

स्वारथ तजि परमारथहिं, साधन करै असङ्ग।
देय अभै सब कहँ इहै, सुधरम श्रेष्ठ अभङ्ग॥
सुधरम साधिय वेगि नृप, शिर पर मृत्यु विचारि।
करि सुसङ्ग सन विमल चित, रूप असङ्ग निहारि॥

॥ चौपाई ॥

विन सतकर्म धर्म दृढ़ नाहीं। विन सुधर्म नहिं शुचि हिय माहीं॥
विन हिय शुद्ध सुबुद्धि न होई। विन सुबुद्धि लह भक्ति न कोई॥
विन हरि भक्ति न उपज विरागा। तेहि विन नाहिं योग अनुरागा॥
विन हठयोग न साँख्य विचारू। साँख्य योग विन ज्ञान न चारू॥
शुद्ध ज्ञान विन मोक्ष न लहई। जो निःसंग अगोचर अहई॥
जिमि अभ्यासहि से निज गेहा। जात अन्ध नित निह संदेहा॥
तिमि जन युक्ति पाय गुरु पाहीं। जात अगोचर हूँ मग माहीं॥
याप स्वरूप होत अविकारा। जन्म मरण विषयन ते न्यारा॥

ज्ञानी महँ न विषय रह कैसे। रहत न नीर पके घट जैसे॥
विषय मध्य रहि लिप्त न ज्ञानी। विन विषयहु लपटत अज्ञानी॥
विषइन मति दृग भ्रम अज्ञाना। किमि मग सूक्ष्म लहहिं अयाना॥
जे न मोक्ष मग जानत अहहीं। काल चक्र परि घूमत रहहीं॥
मन मलाह तन नावरि काहीं। गुन गहि खैंचत रहत सदाहीं॥
मनहिं विषय सँग बन्धन होई। तजे मोक्ष कर कारण सोई॥
ताते मनहिं शब्द महँ लीना। करहिं योग अभ्यास प्रवीना॥
जो शरीर गृह गुनत सुजाना। अन्तर शुद्धि सु तीरथ जाना॥
चलत सुमति वर मारग माहीं। सो पावत सुख शान्त सदाहीं॥
सत वर सुमति क्षमा दम माहीं। कहे हँस विधि साध्य न पाहीं॥

॥ दोहा ॥

सुमति क्षमा दम सत्य धरि, जानै मोक्ष स्वरूप।
शान्त रहै भव विष्णु इव, यह मेरो मत भूप॥
देह काशिका प्रणव शिव, ज्ञान गंग जहँ होइ।
है सोइ जीवन्मुक्त तेहि, जानत बिरले कोइ॥
यह गीता कहि जनक सन, गये पराशर गेह।
सो सुनि गुनि 'जगदीश' निज, चीन्ह्यो रूप विदेह॥

॥ श्रीमहाभारतान्तर्गत जनकसम्वादे पराशरगीता शुभम् भूयात् ॥

—०—

❁ अथ कपिलगीता तृतीय कला प्रारम्भः ❁
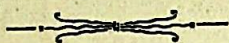
॥ दोहा ॥

जो जन सोहं शब्द सन, मनन किये शुचि चित्त।
सो समुझिहि यह सांख्य मत, सतचित आनँद नित्त॥
एक समय कह कपिल सन, देवहुती कर जोरि।
तव महिमा सुनि चरित लखि, तात अमति मति मोरि॥
तुम निर्गुण निरखत सगुण, अज जन्म्यो मोहिं माहिं।
यक अनेक दोउ किमि बनै, तत्व कहिय मोहिं पाहिं॥
गुन तन्मात्रा भूत तन, सूक्ष्म थूल निकाय।
सब प्रपंच मय रूप निज, दीजिय विलग देखाय॥
मात प्रश्न सुनि मुदित मन, कपिल देव भगवान।
सांख्ययोग मग सुगम गुनि, कहन लगे मतिमान॥

॥ चौपाई ॥

मातु स्वतत्त्व कहौं तोहिं पाहीं। सावधान सुनु धरु मन माहीं॥
पुरुष प्रकृति दोउ हैं जग कारण। एक अनेक वेष किय धारण॥
सतचित पुरुष असत जड़ माया। रवि प्रकाश जिमि अरु तरु छाया॥
जहँ लग सूक्ष्म थूल अकारा। सो सब प्रकृति नाम व्यवहारा॥
इन सबहिन कर जाननहारा। साक्षी पुरुष सदा अविकारा॥

पुरुष प्रकृति शिवशक्ति स्वरूपा । अकथ अनादि अनन्त अनूपा ॥
पुरुष प्रकृति जड़ चेतन दोऊ । एक एक कहँ जान न कोऊ ॥
जिमि दम्पति सोवहिं सँग माहीं । एक एक कहँ जानत नाहीं ॥
सतचित पुरुष चेतन्य प्रभाऊ । होत सत्य इव प्रकृति सुभाऊ ॥
तेज परे जिमि दर्पण माहीं । आग जगत रवि जानत नाहीं ॥
लोह उठत जिमि चुम्बक सँगा । सो नहिं जानत उपल असँगा ॥
तिमि चेतन जड़ ते जग होई । अन इच्छित गति जानन कोई ॥

॥ दोहा ॥

प्रभु सत्ता ते जड़ प्रकृति, भास सत्य इव सोय ।
रजत सीपि महँ भास जिमि, मृग तृष्णा महँ तोय ॥
तेहि सत्ता परिप्रकृति महँ, भो महतत्व अनूप ।
भयउ महा अहँकार सोइ, भो पुनि त्रिगुण स्वरूप ॥

॥ चौपाई ॥

प्रथम फुरेऊ तम गुण अहँकारा । सोइ दश तत्त्व कियो करतारा ॥
शब्द स्पर्श रूप रस गन्धा । यह तन्मात्रा पँच प्रबन्धा ॥
सोइ नभ पवन तेज जल धरणी । पँच भूत सँज्ञा यह बरणी ॥
सूक्ष्म थूल तत्त्व दश येते । द्रव्य शक्ति कहवावहिं तेतें ॥
पुनि अहँकार रजोगुण जोई । कीन चतुर्दश इन्द्रिन सोई ॥
श्रवण त्वचा चष रसना घ्राना । ज्ञानेन्द्रिय यह पँच प्रमाना ॥

वाक्य पाणि पगलिंग गुदाहीं। यह पाँचौ कर्मेन्द्रिय आहीं॥
मन बुधि चित अहमिति यह चारी। अँतःकर्ण नाम तेहि धारी॥
चौदह तत्त्व कहे यह जेते। क्रियाशक्ति कहवावहि तेते॥
पुनि सतगुण अहँकार प्रवीना। चौदह इन्द्रिन के सुर कीना॥
दिशा आदि ज्ञानेन्द्रिय स्वामी। अग्नि आदि कर्मेन्द्रिय नामी॥
चन्द्र आदि अन्तःसुर अहहीं। कहँ लग नाम सवन के कहहीं॥
चौदह इन्द्रिन के सुर जेते। ज्ञानशक्ति कहवावहिं तेते॥
सब मिलि भयउ विराट आकारा। प्रकृति पुरुष मय सब सँसारा॥
सबके देह त्रिविध श्रुति गावहिं। कारण सूक्ष्म थूल कहावहिं॥
अहँकार गुण सँयुत जोई। कारण देह कहावत सोई॥

॥ दोहा ॥

शब्द स्पर्श सरूप रस, गन्ध विषय यह पंच।
मन बुधि चित अहँकार युत, सूक्ष्म देह प्रपंच॥
इन नौ महँ नभ आदि जो, पँचभूत मिलि जाहिं।
दश इन्द्रिन युत देह कहँ, थूल कहत मुनि ताहिं॥

॥ चौपाई ॥

चिन्मय पुरुष त्रिगुण ते पारा। पुर्पष्टिका प्रकाशन हारा॥
तेहि प्रकाश सन तीनिहु देहीं। चेष्टा करति न जानति तेहीं॥
अब सुनु रूप अवस्था चारी। तीनि त्रिगुण युत चौथी न्यारी॥

गगन समीर तेज जल धरणी । पँचभूत सँज्ञा यह वरणी ॥
शब्द स्पर्श रूप रस गन्धा । क्रम ते पंच विषय सम्बन्धा ॥
श्रवण त्वचा चष रसना घ्राना । क्रम ते ज्ञानेन्द्रियन बखाना ॥
वाक पाणि पगलिंग गुदाहीं । यह पाँचौ कर्मेन्द्रिय आहीं ॥
मन बुधि चित अहंकार समेते । अंतःकर्ण कहावहिं येते ॥
चौबिस तत्त्वन्ह करि उजियारा । इन्द्रिन्ह द्वार करै व्यवहारा ॥
रजगुण अधिक वैषरी वानी । ब्रह्मादेव विश्व अभिमानी ॥
भोग स्थूल नयन अस्थाना । है यह जाग्रत दशा प्रमाना ॥
पँचभूत सन समिटि स्वरूपा । नौ तत्त्वन महँ रमत अनूपा ॥
सूक्षम तन सोइ करि उजियारा । करै वासना युत व्यवहारा ॥
सतगुण बहु पश्यन्ति सुबानी । विष्णुदेव तेजस अभिमानी ॥
सूक्षम भोग कंठ अस्थाना । है यह स्वप्न दशा परमाना ॥
भूत विषय इन्द्री सुर जेते । गुण महँ लीन होहिं सब तेते ॥
कारण तन सोइ करि उजियारा । सोवत तजि इन्द्रिय व्यौहारा ॥
तमगुण अधिक मध्यमा बानी । स्वामी रुद्र प्राज्ञ अभिमानी ॥
निद्रा भोग हृदय अस्थाना । इहै सुषुप्ति दशा अज्ञाना ॥
त्रिगुण त्रिदेह अतीत अनूपा । त्रिदशा साक्षी चेतन रूपा ॥
सोहँ देव रूप अभिमानी । परमानँद भोग निर्वानी ॥
वाणी परा मूर्द्ध अस्थाना । तुरिय अवस्था सत्य प्रधाना ॥
सोहं चेतन सर्व अतीता । सर्व प्रकाशक परम पुनीता ॥
जिमि रवि रहत साक्षि इव न्यारा । तेहि प्रकाश कर जग व्यवहारा ॥

॥ दोहा ॥

मिलै जो सोहँ ज्ञान महँ, तुरी अवस्था सोइ।
तुरिया तीतहि अनुभवै, हँ त्वँ रहै न कोइ॥
भाशत जीवन्मुक्त कहँ, तुरिय अवस्था येह।
दशा तुरीया तीत जेहि, लहत सो मुक्ति विदेह॥
कारण सूक्षम थूल च्छर, अच्छर तुरिय प्रमान।
अकथ निरच्छर तुरिय पर, सोहँ पुरुष प्रधान॥
कहत सुनत देखत गुणत, अकथ रहै जो शेष।
पुरुष प्रकृति जहँ ते फुरत, शुद्ध स्वरूप विशेष॥

॥ चौपाई ॥

यह प्रकार हँ निर्गुण काहीं। भ्रमवश अज्ञ लखत गुण माहीं॥
हम हम करि इन्द्रिन्ह सँग सानी। कर शुभ अशुभ करम फल मानी॥
परि परि जन्म मरण भ्रम फँदा। फिरि फिरि लहत दुःख सुख वृँदा॥
मूढ़ न जानत हँ अविकारा। अहँ सर्व कै अहँ निनारा॥
ताते प्रथम संत गुरु देवा। करै कपट तजि सादर सेवा॥
लहै युक्ति मति सतगुरु पाहीं। करै विचार सदा मन माहीं॥
कोहँ को तन को सँसारा। कहँ किमि कौन स्वरूप हमारा॥
जड़ रज वीर्य देह मैं नाहीं। गृह दीपक इव प्रथक सदाहीं॥
इन्द्रिन ते नित पालित देहीं। आपन रूप कहौं किमि तेहीं॥
इन्द्रिहुँ मैं न प्राण तेहि सारा। प्राण न मैं मन तासु अधारा॥

मन मैं नाहिं सो बुद्धि अधीना। बुद्धि न मैं सो अहमित लीना॥
अहमित मैं न सार तेहि जीवा। जीवन मैं चिदावली सीवा॥
मैं न चिदावलि ईश्वर रूपा। तासु सार चिन्मात्र अनूपा॥
सो अद्वैत अनीह अभेदा। निर्विकल्प नित बरनहि वेदा॥
सूक्षम थूल अनातम जेते। भ्रम ते सिद्ध भये सब तेते॥
मैं केवल आत्मा अनूपा। शान्त शुद्ध सम बोध स्वरूपा॥
पुरुष सिन्धु जल प्रकृति तरँगा। सो पर सर्वाधार असँगा॥
एहि विधि जो नित करै विचारा। तौ निज रूप परै लखि न्यारा॥
जिमि रवि यक घट भेद अनेका। प्रकृति भेद बहु तिमि हम एका॥
पँचभूत के प्रकृति पचीसा। प्रथम विचारै निर्गुण ईसा॥

॥ दोहा ॥

हाड़ माँस नाड़ी त्वचा, रोम भूमि गुन जान।
लार पित्त कफ स्वेद अरु, रक्त सलिल पहिचान॥
भूँख प्यास आलस तथा, ऐंड़ाई अरु निन्द।
पँच प्रकृति यह अग्नि कर, बरने कपिल मुनिन्द॥
धावन पसरन उच्छलन, सकुचन चँचल भाव।
होत रहत यह देह महँ, पाँचौ पवन सुभाव॥
काम क्रोध मद लोभ अरु, मोह गगन गुन आहिं।
मैं यह तू कैसे कहत, भूलि भूत भ्रम माहिं॥
श्रवन सुनत परसत त्वचा, चष लष चापत जीह।
सूँघत घ्रान अयान हम, कहत न जान अनीह॥

वाक्य बदन कर कर्म कर, चरन चलत यह बान ।
तजत मूत्र मल लिंग गुद, हम हम कहत अज्ञान ॥
मन मनोऽर्थ चित चिंतना, बुधि सब करति विचार ।
तैं मैं अहमित त्रिगुन बस, जानन पर अहँकार ॥
अहँ एक सर्वात्मा, जानत विधिहर रुद्र ।
हँ तरँग जहँ ते फुरत, सो सम शान्त समुद्र ॥
पुरुष चेतनता प्रकृति की, जड़ता देहु विहाय ।
शेष निरच्छर रूप महँ, आपहि आप समाय ॥
मो जामा जग सियन ते, न्यारो हौं तेहि माहि ।
जल बुल्ला विच पवन जिमि, तिमि जगदीश सदाहि ॥

॥ कवित्त घनाच्छरी ॥

पीत छिति पंच विषय कठिन सुभाव थूल,
स्वच्छ जल चारि विषय द्रावक वृथाही है ।
लाल तेज तीनि विषय उष्ण औ असत्य,
सर्व हौं तो 'जगदीश' सतचेतन सदाही है ॥१॥
पवन से सत्य हौं तो पवन से कैसे कहौं,
सब्ज शब्द पर्शचर सो न मोहि माहीं है ।
गगन से पूरो हौं तो गगन से कैसे कहौं,
तामे श्याम शब्द थिर मो में कछु नाहीं है ॥२॥

॥ दोहा ॥

तम रज सत अहंकार महँ, सोउ नहिं मेरो रूप ।
कहत सुनत लखि गुनत महँ, शेष स्वरूप अनूप ॥

॥ चौबोला छन्द ॥

मनन करै नित घ्राण गंध महँ रसना रस महँ मानै ।
दृष्टि रूप महँ त्वचा परस महँ कान शब्द महँ जानै ॥
चरन चलन महँ करहु करन महँ वाक्य बोलने माहीं ।
गुदा शिश्न मल मूत्र तजन महँ गुनै असक्त सदाहीं ॥
मोहतमो महँ लोभ अर्थ महँ मद रज माहिं निहारै ।
और कहौं गति सूक्षम तुमसों सूक्षम मतिहि विचारै ॥
अग्नि उदर महँ भूमि सलिल महँ सलिल तेज महँ लागे ।
तेज पवन महँ पवन गगन महँ गगन महत महँ पागे ॥
महत्तत्व आसक्त बुद्धि महँ बुधि तम महँ अनुमानै ।
तम रज मह रज सत्व सुगुन महँ सो जिय महँ पहिचानै ॥
जीव असक्त प्रकृति युत प्रभु महँ प्रभु कैवल्यहि माहीं ।
निराशक्त कैवल्य परात्पर सो रस एक सदाहीं ॥

॥ सोरठा ॥

मन कारनि बुधि मानि जन्म हेतु पूरब करम ।
तन आश्रित सब जानि तत्व विचारै ज्ञान मन ॥

उदासीन निरद्वंद अनाशक्त मध्यस्थ जोइ ।
शुद्ध सच्चिदानन्द निर्विकार अव्यक्त सोइ ॥
इन्द्रियादि कर जौन आतम महँ आरोप इव ।
जानै भ्रम ते तौन सर्व सपन यक सत्य सोइ ॥
साधै जन्म अनेक देहोद्भव के दोष तजि ।
तब सिधि होइ विवेक सो लाखन महँ एक कोइ ॥

॥ चौपाई ॥

काम क्रोध भय निद्रा स्वासा । पंच दोष यह देह प्रकासा ।
जीति युक्ति सन ज्ञान विचारै । तुरत तरै भवसागर पारै ।
तरि अपार भवनिधि सन सोई । सांख्य मती नभ महँ गत होई ।
तहँ रविकर लहि बास विशेषै । चौदह भुवन विषय सब देखै ।
पुनि तहँ ताहि मिलत सो वाऊ । सप्तलोक गत त्रिविध सुभाऊ ।
सो शुचि पवन तमोगुण पाहीं । प्राप्त करत तम रज सत माहीं ।
सत्व शुद्ध प्रभु प्रापत करई । प्रभु परमातम महँ गत करई ।
मिलि परमातम महँ नित सोई । बहुरि न भव महँ आवन होई ।

॥ दोहा ॥

भूत विषय इन्द्रिय अमर, जीव एक पर एक ।
चेतन सर्व प्रकाश कर, सोहं कपिल बिवेक ॥
सांख्य ज्ञान सुनि तत्व गुनि, भो हिय हर्ष अनूप ।
देवहुति अरु कपिल चित, वृत्ति भई यक रूप ॥

देवहुति प्रति जो कह्यो, कपिल देव निज भेव।
जड़ जीवन हित अल्प महँ, सो वरण्यो 'जगदीश' ॥
जो पाये सद्गुरु कृपा, तिच्छण बिमल विचार।
तिनहिं कपिल गीता सहज, समुझि परिहि मतसार ॥

॥ श्रीज्ञानदिवाकर कपिल देवहुती संवाद सांख्ययोग कपिल गीता तृतीय कला शुभम् भूयात् ॥

—o—

❀ अथ अवधूत गीता चतुर्थ कला प्रारम्भः ❀

॥ दोहा ॥

करि तप ध्रुव जब विष्णु सन, लहे अटल अस्थान।
तब आये तिनके निकट, तीनि सन्त मतिमान ॥
एक पराशर ज्ञान निधि, दूसर दत्तात्रेय।
बामदेव तीसर मनहुँ, ज्ञातो ज्ञानहु ज्ञेय ॥

॥ चौपाई ॥

तीनि सन्त ध्रुव आवत देखे। हृदय हर्ष हरि से बढ़ि लेखे ॥
धाय दण्डवत करि उठि भेटे। नयन सलिल चिन्ता नल मेटे ॥
करि बहु विनय कुटी लै गयऊ। प्रेम सहित शुचि आसन दयऊ ॥

ते कह तैं ध्रुव सन्त सुजाना। हरि सन लीन्ह अटल अस्थाना
हम न सन्त न तजो हरि देते। तौ सोइ हमहुँ अटल पद लेते
पुनि कह तुहि अस ज्ञान अनन्ता। शान्त स्वतन्त्र कहावत सन्ता
कह अवधूत जोहै सम भाऊ। तौ को सन्त असन्त सुभाऊ
कह ध्रुव को तुम सो कहतैंहै। कह ध्रुव को मैं सो कहमैं है
को तूँ महीं रूप क्या तेरा। जो तव रूप मोर क्या मेरा
यह सुनिकै ध्रुव अचरज लहेऊ। मैं क्या करौं मवन गहि रहेऊ
कह अवधूत मौन जनि होई। कह ध्रुव प्रश्न चलत नहिं कोई
ध्रुव यहि हेतु अटल पद चाहा। थिर बहु काल रहब जेहि माहा

॥ दोहा ॥

आपु अटल अरु अटल पद, चाहै लाज न लाग।
सुने न कहुँ जड़ भूत तन, आतम अक्षय अदाग॥
जिमि पुरान पट त्यागि नर, पहिरे फेरि नवीन।
तिमि तन तजि धारत अपर, आत्म सोई अविछीन॥

॥ चौपाई ॥

मैं नहिं चहत रहै मम देहा। पंचभूत कृत नित्यहि एहा
कर्तव कीन्ह चहिय अविनाशी। सो यह आप आप सुखराशी
जब तोहि कीन्ह कृपा जगनाहा। तब अयान यह जाँचेहु काहा
अहै अटल पदवी यह कैसे। गिरि मंदर पर मंदिर जैसे

कहा विशेष लाभ एहि माहीं । सुनि ध्रुव कहन लगे मुनि पाहीं ॥
केहि विधि लहौं स्वरूप कृपाला । कह अवधूत वचन तेहि काला ॥
लहे अटल पद मारग जेही । आतम खोज करहि मग तेहि ॥
कह ध्रुव आगे मारग कहिये । जेहि निश्चय करि आनन्द लहिये ॥
प्रथम करै सत जन सतसंगा । द्वितीय सुनै श्रुति शास्त्र प्रसंगा ॥
करि विश्वास विचारत रहई । जड़ तन महँ चेतन को अहई ॥

॥ दोहा ॥

कह ध्रुव जानत हौंकि हौं, चेतन हौं पर काह ।
बामदेव कह सच्चिदानन्द, तू है सब माह ॥

॥ ध्रुव उवाच चौपाई ॥

मोहिं विराग कहहु समुझाई । बामदेव सुनि रह्यो चुपाई ॥
कहे पराशर घरके त्यागे । होत विराग न हम महँ पागे ॥
सुनु अब यह बिराग ध्रुव नाहीं । तू नहिं तौ का करत वृथाहीं ॥
ध्रुव कह मैं नहिं तौ फिरि कोहै । सो कह मैं सुनिकै तेहि जोहै ॥
पुनि कह तैं तौ मैं कस नाहीं । सो कह मैं अद्वैत सदाहीं ॥
जो अद्वै तुम तौ महुँ तैसे । सो कह द्वैत अटल पद कैसे ॥
कह ध्रुव कहनमात्र पद अहई । सो कह क्यों तेहि चाहत रहई ॥
अस कहि तीनिहुँ हँसे सुभाये । का हम काम करन इत आये ॥
आतम आपही आप सदाहीं । ताते काह करैं ध्रुव काहीं ॥

कह ध्रुव मोहिं मुक्ति की चाहा । सो कह तजु वासना प्रवाहा ॥
कह ध्रुव चाह भूत की नाईं । मनहिं गहे कहुँ मंत्र गोसाईं ॥
सो कह करु विराग मैं नाहीं । तू नहिं तौ बासना कहाहीं ॥
अस बैराग कह्यो ध्रुव पाहीं । तैं मैं तासु रह्यो कछु नाहीं ॥

॥ दोहा ॥

पै ज्ञानी शठ शिष्य सन, कहत तत्त्व सो नाहिं ।
गुरु सन करत समानता, गुन अहमित बस माहिं ॥

॥ चौपाई ॥

कह ध्रुव तजौं वासना कैसे । हरि अद्वैत जानु ध्रुव ऐसे ॥
जो आतम यक तौ मैं कोहँ । सो कह करु प्रतीति की सोहँ ॥
जो परमात्म अखिल जग माहा । तौ करि भजन प्रयोजन काहा ॥
सो कह भजन न तप जप ध्यानू । सदा सर्व मैं यह दृढ़ जानू ॥
संत अटल पद तेपर अहहीं । अपनेहिं माहिं मगन नित रहहीं ॥
शिव यक बार पराशर काहीं । कहेउ कि लेहु राज जग माहीं ॥
सो कह संतन्ह उर इर्षाई । बढ़िहि बिलोकि मोरि प्रभुताई ॥
ध्रुव कह आप अटल पद लेहू । सो कह मोहिं न प्रयोजन येहू ॥
दत्तात्रेयहि कह तुम लीजै । जेहि यह भूँख होइ तेहि दीजै ॥
वामदेव कहँ बूझत भयऊ । तेउ ध्रुव कहँ यह उत्तर दयऊ ॥
यह मति नीच तुमहिं कहँ अहई । को अज्ञान बन्ध महँ रहई ॥

जब शिव एक चराचर व्यापा। सदा एक रस आपहि आपा॥
ध्रुव वन बीच पुकारत येहू। अहे अटल पदवी कोउ लेहू॥
बोले तृण तरु पत्र अनेका। भीतर बाहेर है हरि एका॥
चल कह जौन अचल पद लेई। सुनि ध्रुव कछुक न उत्तर देई॥
गुणातीत अहँकार समाना। परेउ धरणि ध्रुव मृतक समाना॥
कहेउ पराशर देखि अचेता। जागु जागु धृव होहि सचेता॥
जानु इहै की मैं नहिं कोई। है यक आतम सनातन सोई॥
कह ध्रुव रूप कहा मम अहई। चिन्मय शांत सदा सम रहई॥
कह ध्रुव को तुम सो कह तू है। सुनि निज रूप मिल्यो ध्रुव जू है॥

॥ दोहा ॥

सो कह यह बालक मुयउ, कह अवधूती सीव।
सुन्यो जो वुधि श्रुति मम वचन, सो नहिं रहेउ सजीव॥

॥ चौपाई ॥

बामदेव कह भल नहिं कीन्हें। यह कहि राजकुँवर जिय लीन्हे॥
कह अवधूत न नृप सुत येहा। है शिव रूप स्वरूप विदेहा॥
पुनि तेहि दत्तात्रेय कृपाला। लगे जगावन दीनदयाला॥
जागु जागु ध्रुव ज्ञान निधाना। जानन योग्य तत्व तुम जाना॥
जीवन्मुक्त भयउ भव न्यारा। करहु देह सन सब ब्योहारा॥
मगन स्वरूप सुनत ध्रुव नाहीं। प्रभु बनि सूक्ष्म धँसे हिय माहीं॥

चित्त वृत्ति सन ताहि जगाये । सोइ निज सौंह प्रकट लखि पाये ॥
आत्मरूप अवधूतहि जानी । परमानन्द मगन ध्रुव ज्ञानी ॥

॥ दोहा ॥

कह ध्रुव चिन्मय तत्त्व अब, जानेउँ कछु भ्रम नाहिं ।
केहि आचरण सुभाव सन, चलिय रहिय भव माहिं ॥
हँसि कह दत्तात्रेय ध्रुव, तू सब तत्त्व सुजान ।
पै ज्ञानिन्ह दृढ़ बोध हित, चाहत सुनन प्रमान ॥

॥ चौपाई ॥

एक समय भृंगी मन माहीं । भो विचार यह जग थिर नाहीं ॥
केहि आश्रय दृढ़ चाहिय लीन्हा । शिवसन जाइ प्रश्न तब कीन्हा ॥
देव देव त्रिभुवन गुरु स्वामी । दीनबन्धु सब अन्तर्यामी ॥
यह जग मिथ्या भ्रम एहि माहीं । सत्य पदारथ है कोइ नाहीं ॥
लखि सुनि समुझि परै जहँ ताईं । सो सब है चल रूप गोसाईं ॥
सत्य पदार्थ न जानत अहऊँ । ताते भ्रमत दुखित नित रहऊँ ॥
होइ शान्ति जेहि सब दुख जाहीं । विचरौं अभय आचरण माहीं ॥
अभय अशोच होइ मन तबहीं । लहै कछुक दृढ़ आश्रय जबहीं ॥
जो कछु दृश्य असत अब अहई । को सत जेहि चित आश्रय गहई ॥
सो उपदेश करिय अब मोहीं । जेहि महँ कष्ट नष्ट सब होहीं ॥
सुनि गण प्रश्न मुदित मदनारी । जानेउ ताहि परम अधिकारी ॥
अति प्रिय पुत्र सरिस निज जानी । बोले शम्भु सुधा सम बानी ॥

॥ छन्द ॥

तुम महा कर्ता महा भोक्ता महा त्यागी ह्वै रहो।
त्रयदेव सम तजि सर्व शङ्का धैर्य को आश्रय गहो॥
सर्वात्म अनुभवरूप उर धरि जगत में विचरहु सुखी।
इन तीनि वृत्ति प्रभाव से कबहूँ न फिरि ह्वैहौ दुखी॥

॥ दोहा ॥

नाथ महा कर्ता कहहु, महा भोक्ता कौन।
काहि महा त्यागी कहत, कहिय स विस्तर तौन॥

॥ ईश्वर उवाच चौपाई ॥

जो शुभ कृपा प्राप्त कछु होई। शङ्का त्यागि करै तेहि सोई॥
धर्म अधर्म अनिच्छित कर्मा। करै सो राग द्वेष तजि भर्मा॥
लखै स्वरूप अकर्ता जोई। पुरुष महा कर्ता है सोई॥
मौनी निर्मल निरहङ्कारा। मत्सररहित महा कर्तारा॥
मिलै अनिच्छित तजै न ताही। जो न मिलै तेहि चाहै नाहीं॥
जो अघ पुण्य अनिच्छित होई। करै त्यागि अहमित भ्रम दोई॥
पुण्य किये पुण्यात्म न माना। किय अघ आपहि अघी न जाना॥
अपनेहि जान अकर्ता जोई। पुरुष महा कर्ता है सोई॥
जो सर्वत्र बिगत रत रहई। सहज सत्यवत स्थित अहई॥
इच्छा रहित करै व्यवहारा। ऐसो पुरुष महा कर्तारा॥

दुख महँ दुखी न सुख सुख माहीं । सहज चित्त सम लखै सदाहीं ॥
प्राप्त न होइ विषमता जेही । कहत महा कर्ता हम तेही ॥

॥ दोहा ॥

पाय शुभाशुभ वस्तु कहँ, रागद्वेष तजि जौन ।
भोगत अहमित रहित जोइ, महा भोगता तौन ॥

॥ चौपाई ॥

महा कष्ट लहि द्वेष न करई । पाय महा सुख राग न धरई ॥
राज भोग लहि सुखी न माना । लहि दरिद्र निज दुखी न जाना ॥
सत स्वरूप महँ इस्थित जोई । जानहु महा भोगता सोई ॥
अहमित मान चिंतना हीना । केवल समता महँ लै लीना ॥
कहुँ कछु देइ आपु कहँ कोई । लेनहार नहिं मानै जोई ॥
आप देइ कछु औरहु काहीं । देनहार निज मानै नाहीं ॥
सम स्वरूप महँ इस्थित जोई । जानहु महा भोगता सोई ॥
षट रस पाय एक रस रहई । सम चित महा भोगता अहई ॥
सरस वस्तु लहि मुदित न जोई । निरस मिले चित दुखित न होई ॥
भोगै वस्तु पाय भल पोचा । महा भोगता पुरुष अशोचा ॥
कृपा शुभाशुभ भाव अभाऊ । तेहि दुख सुख चित छोभ न काऊ ॥
जेहि न मृत्यु भय जियन न आसा । उदय अस्त महँ सम चित भासा ॥
रहै एक रस दुख सुख माहीं । महा भोगता जानहु ताहीं ॥
पाय अनिच्छित बाहर भोगू । अहं रहित हिय आतम योगू ॥

उदासीन अरि हित सम जेही। महा भोगता जानहु तेही॥
जो शुभ अशुभ दुःख सुख लहई। रहित विषमता सम गुनि गहई॥
जिमि सरि मिलहिं सिन्धु महँ जाई। धारत सो न तजत समताई॥
तिमि शुभ अशुभ धारि सम रहई। पुरुष महा त्यागी सो अहई॥
जो जग तन इन्द्रिय अहँकारा। इनहिं तज्यो गुनि असत विकारा॥
हम न देह तन है न हमारा। साक्षी रूप अहँ नित न्यारा॥
ऐसी वृत्ति धरै दृढ़ जोई। पुरुष महा त्यागी है सोई॥
जो विन राग द्वेष अभिमाना। फल तजि कर्म करै विधि नाना॥
त्रिगुण अतीत अहँ सम जाना। पुरुष महा त्यागी मतिमाना॥
द्वैत अहँ भ्रम फ़ुरत न जेही। कहत महा त्यागी हम तेही॥

॥ दोहा ॥

मन इन्द्रिय तन रहित ह्वै, करत सकल व्यवहार।
तौन महा त्यागी पुरुष, अन इच्छित अविकार॥
धर्माधर्म शरीर जड़, अरु सँसृत मद मान।
रहित महा त्यागी पुरुष, समचित गगन समान॥

॥ सोरठा ॥

सुनि महेश उपदेश भृङ्गी गण गुनि हर्ष अति।
बीते सकल कलेश रहन लग्यो निज वृत्ति महँ॥
बामदेव भगवान सहित पराशर योग निधि।
हो गये अन्तर्ध्यान ध्रुव कृतार्थ लहि तत्त्व सिधि॥

॥ दोहा ॥

यह गीता अवधूत मत, पढ़ि सुनि गुनै हमेश ।
लहै तत्त्व 'जगदीशानन्द' सोइ, व्यापै कछु न कलेश ॥

॥ श्रीज्ञानदिवाकरे अवधूतगीतायां रुद्रभृङ्गीसंवादे जीवन्मुक्ता-
चरणवर्णनो चतुर्थी कला शुभम् भूयात् ॥
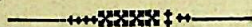
अथ जड़भरत गीता पंचम कला प्रारम्भः

॥ दोहा ॥

हृदय आत्म विद्या मगन, बाहिज मनहुँ अयान ।
मूढ़ हँसत गुनि बावरो, ज्ञानी जान सुजान ॥

॥ सोरठा ॥

विद्या मद करि पान अति विचित्रता परत लखि ।
थोरेहि में बौरान अधिक भये मति थिर रहै ॥

॥ चौपाई ॥

जब जड़भरत इन्द्र तप कीन्हा । कछु दिन माहिं दरश तिन दीन्हा ॥
हँसि जड़ भरत कहा तुम कोहौ । देहौ काह कृपा करि जोहौ ॥

हम सुरेश तव तप लखि आये। माँगु रुचित फल देव सुभाये॥
तुम देहौ कै अनत देवैहौ। मेरे कहे विधि से फल पैहौ॥
कह जड़भरत न मोहिं तोहिं काजा। अब विधि तप करिहौं सुर राजा॥
चारि मास तप लखि विधि आये। माँगु माँगु वर वचन सुनाये॥
तव कर दण्ड कमण्डलु दोई। देह कहाँते माँगव जोई॥
कहब यथा हम तैसहि होई। पै हरि सकल काम प्रद सोई॥

॥ दोहा ॥

बोले विधि सन जड़भरत, मम तुमसे नहिं काम।
अब मैं माँगब विष्णु सन, आप जाव निज धाम॥

॥ चौपाई ॥

तात अमोघ दरश मम अहई। कछु वर माँगु सुनत सो कहई॥
प्रभु मोहिं मिलहिं विष्णु भगवाना। हौं तेहि सन मगिहौं वरदाना॥
तब विधि त्रिधिवत मन्त्र बताये। अष्टाक्षरी निगम जेहि गाये॥
जाहु जपहु बदरी वन येहू। मिलिहहिं विष्णु न कछु सँदेहू॥
अस कहि अन्तर हित विधि भयऊ। तबहिं भरत बदरी वन गयऊ॥
तहँ पट मास मन्त्र जप कीन्हे। नारायण तेहि दर्शन दीन्हे॥
देखत इष्टदेव निज चीन्हा। उठि जड़भरत दण्डवत कीन्हा॥
हँसि कह विष्णु माँगु सोइ पैहै। कह जड़भरत कहाँ से दैहै॥
देव हमहिं प्रभु कह तेहि पाहीं। आपुहि आपु अपर कोउ नाहीं॥
इन्द्र विधिहि यह शक्ति न देवा। कैसे तुमहिं कहहु सो मेवा॥

कह प्रभु तिनहिं न आतम ज्ञाना। मैं निज रूप यथारथ जाना॥
मोहिं महँ द्वैत भेद कछु नाहीं। आपुहि आपु अहौं सब माहीं॥

॥ दोहा ॥

यह सुनि बोले जड़भरत, मम तुम सन का काम।
जानेउँ हौंहु स्वरूप अब, आप जाव निज धाम॥

॥ चौपाई ॥

कह प्रभु जो यह जानत रहेऊ। तौ तप साधि कष्ट कस सहेऊ॥
हरि तुम्हार दातव्य परेखा। पर एकहि परमातम देखा॥
कोउ न काहु कछु देत न लेता। केवल सत अद्वैत सचेता॥
हम तप कीन्ह न तुम इत आये। अन जानत हित भाव जनाये॥
प्रभु स्वरूप तव यक नभ जैसे। आउब जाव बनै कहु कैसे॥
कहनमात्र व्यवहार सकल अस। आत्म स्वरूप शान्त जस को तस॥
जिमि घट कतहुँ दूरि लै जाई। घटाकाश कहुँ आव न जाई॥
जिमि जल बीचि उठै चलि जाई। मिलत आपु महँ द्वैत न राई॥
आपन कर अपने मुख माहीं। गये रहत निश्चय अपनाहीं॥
तिमि यक निश्चय मोहिं सदाहीं। आउब जाव स्वरूपहु माहीं॥

॥ दोहा ॥

पंचभूत यह देह लखु, ते कहँ आवत जात।
जस के तस जल बीचि इव, जानि लियो यह बात॥

॥ चौपाई ॥

हँ त्वँ आदिक शब्द अकारा। है भ्रम मात्र सकल संसारा ॥
सत् चिन्मात्र आत्मा जोई। हँ त्वँ आदि फुरै तहँ सोई ॥
है यक मिर्च बीज ब्रह्मण्डा। तीक्ष्णता चेतन्य अखण्डा ॥
ऐसी मिर्च सहज मैं भाषा। कइक सहस्र लगी यक शाखा ॥
ऐसी शाख एक तरु माहीं। कइक सहस्र लगी भ्रम छाहीं ॥
ऐसे तरु यक विपिन मँझारी। कइक सहस्र लगे बहु भारी ॥
ऐसे वन पुनि कइक हजारा। इस्थित हैं यक शिखर अघारा ॥
ऐसे कइक सहस्र शिखर बर। लागे रहत एक पर्वत पर ॥
ऐसे पर्वत कइक हजारा। एक नगर महँ अहहिं अपारा ॥
ऐसे नगर द्वीप यक माहीं। कइक सहस्र गने नहिं जाहीं ॥
ऐसे द्वीप सहस्र अनेका। राजि रहे भव पृथ्वी एका ॥
अस भव पृथ्वी कैक हजारा। एक अण्ड महँ सृष्टि पसारा ॥
ऐसे कइक सहस्रन अण्डा। यक समुद्र महँ लहरि अखण्डा ॥
अस कइ सहस समुद्र अपारा। यक समुद्र की लहरि विचारा ॥
ऐसे कइक सहस्र समुद्रा। हैं पुनि एक पुरुष के उद्रा ॥
ऐसे अगणित पुरुष बिशाला। एक पुरुष के गर महँ माला ॥
ऐसे कोटिन पुरुष प्रधाना। एक सूर्य के अणु अनुमाना ॥
ऐसे कोटिन सूर्य प्रकाशा। अथवहिं उअहिं एक आकाशा ॥
सोइ सच्चिदानन्द घन रूपा। परमात्मा अखण्ड अनूपा ॥
फुरहि अनन्त सृष्टि जेहि माहीं। शान्त शुद्ध सम आपु सदाहीं ॥

॥ दोहा ॥

सो हँ त्वँ त्वँ हँ सोई, समुझि भरत भे मौन ।
एक भई दुहुँ वृत्ति मिलि, कहै कौन को कौन ॥
तेहि स्वरूप गुनि हर्षि हरि, ह्वै गए अन्तर ध्यान ।
तत्त्व मगन पुनि जड़भरत, कीन्हे अनत पयान ॥
यह गीता जड़भरत को, पढ़ि सुनि गुनै जो कोइ ।
विमल ज्ञान 'जगदीशानन्द' लहि, जीवन्मुक्त सो होइ ॥

॥ श्रीज्ञानदिवाकरे जड़भरतगीतायां परमात्मस्वरूपवर्णनो नाम पंचमी कला शुभम् भूयात् ॥

—+०❀०+—

❀ अथ सिद्धगीता षष्ठी कला प्रारम्भः ❀

॥ दोहा ॥

जेहि सन भासत जगत सब, जेहि महँ मिलि थित होय ।
सो कह किमि कथते कवन, जाहि न जानत कोय ॥
ज्ञाता ज्ञानहु ज्ञेय अरु, द्रष्टा दर्शन दृश्य ।
क्रिया करण कर्ता फुरत, पाय सत्यता यश्य ॥
जेहि आनन्द घन सिन्धु के, कन सन सकल अनन्द ।
जेहि आनन्द सन सब जियत, जयति सच्चिदानन्द ॥

विधिहि पराशर शुक मुनिहि, हिय गर्भहि महँ जौन।
वेद तत्त्व अनुभव कियो, करहु कृपा गुरु तौन॥
मन्त्र उचारत जीह विन, श्रुति विन सुनत हमेश।
सो गुरु शिष जगदीश हिय, करहु ज्ञान उपदेश॥
यह भव विभव अनित्य गुनि, चित्त वृत्ति करि एक।
कहौं सो गीता जनक जिमि, पाये विमल विवेक॥
जासु उदय भइ सम्पदा, सकल आपदा नास।
ऐसो भयो विदेह नृप, शुभ गुण ज्ञान निवास॥

॥ चौपाई ॥

एक समय नृप सहित समाजा। गयउ बाग निज विचरन काजा॥
कीन्ह प्रवेश तहाँ नृप कैसे। नन्दन विपिन पुरन्दर जैसे॥
सब अनुचरन दूरि नृप त्यागा। आप कुंज बिच विचरन लागा॥
शेमल वृक्ष निकट जब गयऊ। तहँ सन शब्द सुनत अस भयऊ॥
अष्ट सिद्ध जे विरत पुनीता। कहहिं परस्पर आतम गीता॥
जेहि सुनि अनघ होइ मन एका। विरत विचार स्वरूप विवेका॥
शब्द सुनन महँ नृप मन दयऊ। प्रथम सिद्ध अस बोलत भयऊ॥
द्रष्टा दृश्य मिलन महँ जोई। बुधि महँ निश्चित आनँद होई॥
इष्ट संयोग अनिष्ट वियोगू। होइ चित्त दृढ़ जो सुख भोगू॥
वह आनन्द अनूपम जोई। उदय होत आतम सन सोई॥

॥ दोहा ॥

जेहि आतम आनन्द सन, लव जिमि उठत स्पन्द ।
हम तेहि करत उपासना, सहज सच्चिदानन्द ॥

॥ चौपाई ॥

प्रथम सिद्ध मत जब सुनि लयऊ । दूसर सिद्ध कहत अस भयऊ ॥
द्रष्टा दर्शन दृश्य बिभेदा । सह बासना तजहु कह वेदा ॥
जो दर्शन से प्रथम प्रकासा । जेहि प्रकाश से तीनिहुँ भासा ॥
जोपि सच्चिदानन्द स्वरूपा । सो हमार ध्रुव इष्ट अनूपा ॥
तृतीय सिद्ध कह जासु प्रकासा । निराभास निर्मल आभासा ॥
जेहि महँ मन न द्वितीय अभाऊ । हम तेहि इष्ट करत सत भाऊ ॥
चौथ सिद्ध कह दुहुँ मधि जोई । अस्ति नास्ति पर सतचित सोई ॥
रवि आदिक कहँ करत प्रकासू । हम नित करत उपासन तासू ॥
बोलेउ पञ्चम सिद्ध उदारा । जो प्रभु भयउ सकार हकारा ॥
अन्त रहित आनन्द अनूपा । शिव परमातम विन्दु स्वरूपा ॥
सब जीवन हिय इस्थित जोई । हं स्वरूप उच्चारण होई ॥
ध्यावहिं सन्त सुरति के द्वारा । सो परमातम इष्ट हमारा ॥
छठँवँ सिद्ध कह उर प्रभु त्यागी । यतन करहिं जे औरहि लागी ॥
ते कौस्तुभ कर ते परिहरहीं । काँच किरिच हित इच्छा करहीं ॥
कह सप्तम जब तजि सब आसा । शब्द निरन्तर कर अभ्यासा ॥
तब विष वेलि वासना नाशा । लहै अमृत फल शान्त निराशा ॥

जो सब वस्तु निरस अति जाना। फिर तेहि आश बँधत अज्ञाना॥
सो कुबुद्धि खर है नर नाहीं। अष्टम सिद्ध कहा तिन पाहीं॥
जेहि जेहि विषय ओर मन जाई। तेहि विवेक सन नाशहु भाई॥
इन्द्र वज्र सन जिमि गिरि नाशा। तिमि विवेक सन खण्डहु आशा॥

॥ दोहा ॥

जब मन शुभ आचरण करि, होइ विरत सम भाव।
तब परमात्म स्वरूप मिलि, अक्षय अभय पद पाव॥
मुनि गीता सुनि जनक नृप, पुनि पुनि गुनि दृढ़ चित्त।
है जग जीवन्मुक्त गृह, राज भोग कर नित्त॥

॥ सोरठा ॥

कहहिं सुनहिं जे लोग गुनहिं सिद्ध गीता अमल।
लहहिं ते आतम योग जो जगदीश स्वरूप सत॥

॥ श्रीज्ञानदिवाकरे योगवासिष्ठमते सिद्धगीतायामष्ट सिद्धसंवादे जनकबोधप्राप्ति नाम षष्ठी कला शुभम् भूयात्॥

❀ अथ जीवन्मुक्तगीता सप्तम कला प्रारम्भः ❀

॥ श्रीदत्तात्रेय उवाच ॥ दोहा ॥

बौद्धमती तन नष्ट कहँ, मानत मुक्ति अयान।
यह गति शूकर स्वान लह, कहा अगम निर्वान॥

जीवात्मा सब भूतमय, थित चित आनँद रूप।
देखै एक अखण्ड सोइ, जीवन्मुक्त अनूप॥

जिमि रवि भासत अखिल जग, तिमि व्यापक शिव जीव।
सर्वभूतमय थित लखै, सो जन मुक्त सजीव॥

जिमि यक विधु बहु जल विपुल, भयहु रहत यक उक्त।
तिमि जिव एक अनेक यक, लखै सो जीवन्मुक्त॥

सर्वभूत थित ब्रह्म लखि, रहित जो भेद अभेद।
अद्वितीय जाने सुजन, जीवन्मुक्त अभेद॥

जो नभ आदि अतीत तन, हम क्षेत्रज्ञ सुजान।
हम कर्ता हम भोक्ता, जीवन्मुक्त प्रमान॥

कर्मेन्द्रिय तजि ध्यान सन, मनहिं निवृत करि जौन।
लीन कियो परमात्म महँ, जीवन्मुक्त सु तौन॥

केवल दैहिक कर्म गुनि, दुख सुख रहित जो कोइ।
तजै शुभाशुभ ज्ञान सन, जीवन्मुक्त सो होइ॥

कर्मरहित है कर्म सब, जानै ब्रह्म स्वरूप।
है जग जीवन्मुक्त सोइ, अमल अखण्ड अनूप॥

ज्ञान भये आकाश इव, व्यापक जग करतार।
जानै सब महँ एक सोइ, जीवन्मुक्त विचार॥

जीव सीव सब भूत मय, लखै अनादि अनन्त।
सम सब से निर्वैर सोइ, जीवन्मुक्त सु सन्त॥

आत्मा गुरु चिद्रूप भव, पालक लिप्त न होय।
द्वैतरहित नित जान जोइ, जीवन्मुक्त है सोय॥

गर्भ ध्यान सन परसिमन, आत्महि सोहं जान।
लीन करै मन ज्ञान सन, जीवन्मुक्त सो मान॥

ऊर्ध्व ध्याइ मन शून्य लय, विलय क्रियो सँयोग।
जानिय जीवन्मुक्त सोइ, कहत सु योगी लोग॥

जेहि मन करि अभ्यास नित, होइ ध्यान महँ लीन।
बन्ध मोक्ष से रहित सोइ, जीवन्मुक्त प्रवीन॥

रमत अकेल यकान्त नित, रहित सहज गुण जौन।
ब्रह्म ज्ञान रस स्वाद लह, जीवन्मुक्त सो तौन॥

हृदय ध्यान सन निज मनहिं, जान प्रकाश अयुक्त।
सो हँ हँ सो रूप लखि, मगन सो जीवन्मुक्त॥

एकात्मा शिव शक्ति सम, जान पिंड ब्रह्मंड।
हिय भ्रम तजि दृढ़ मति धर्यो, जीवन्मुक्त अखंड॥

संतन सोहं इष्ट सन, त्यागी अवस्था तीन।
होइ तुरीया लीन सोइ, जीवन्मुक्त प्रवीन॥

गुण मणि गण इव अखिल थिति, सोहं ज्ञान अनूप।
सोहँ ब्रह्म अरूप गुणि, जीवन्मुक्त स्वरूप॥

मन संकल्प विकल्प वपु, भेदा भेदक हेत।
आत्म मिले सोइ मोक्षप्रद, जीवन्मुक्त सचेत॥

सिद्ध न कर सिद्धान्त यह, मनहिं जगत कर हेत ।
सब महँ चेतन जान सोइ, जीवन्मुक्त सचेत ॥
योगाभ्यासी श्रेष्ठ मन, अँतर तजि जड़ होइ ।
अंतर बाहर दोउ तजै, जीवन्मुक्त है सोइ ॥
थूल परे सूक्ष्म परे, कारण पर अहंकार ।
निरावरण पूरण लखै, जीवन्मुक्त विचार ॥
यह श्री दत्तात्रेय कर, गीता जीवन्मुक्त ।
कहि सुनि गुनि जगदीश मन, होइ स्वरूपहि युक्त ॥

॥ श्रीज्ञानदिवाकरे दत्तात्रेय जीवन्मुक्तगीता सप्तम कला शुभम् भूयात् ॥

❀ अथ भुशुण्डिगीता अष्टम कला प्रारम्भः ❀

॥ दोहा ॥

इड़ा पिंगला सुष्मणा, शशि रवि पावक रूप ।
सबहि प्रकाशक नित्य यक, प्रणवौं आत्म अनूप ॥
बन्दौं काग भुशुण्डि पद, त्रिभुवन पंकज भृंग ।
मुनि वशिष्ठ त्रैलोक गुरु, कीन्ह जासु सत संग ॥

॥ चौपाई ॥

इंद्र सभा सन कृत युग माहीं । बिधि सुत गयो काग पति पाहीं ॥
गिरि सुमेरु कन्दर जेहि नामा । पद्म राग लखि भा बिश्रामा ॥

परम बिचित्र कल्पतरु जोहे। जहँ बहु भाँति बिहँगकुल सोहे॥
अतिहि अनूप शाख वर एका। तेहि पर राजत काग अनेका॥
काग सभा बिच राज भुशुंडी। योग ज्ञान निधि आयु अखंडी॥
लखि भुशुंडी तेहि सादर लीन्हा। पूजि सप्रेम वरासन दीन्हा॥
हाथ जोरि कहे अंतर्यामी। आगम हेतु कहिय अब स्वामी॥
कह मुनि तुम सुजान खगराया। चिदानंद वपु अमर अमाया॥
बहु युग गत तोहि बसत इहाहीं। जिमि रविके बहु निशिदिन जाहीं॥
सुनी शता तप मुनि मुख सोई। महाप्रलय तव नाश न होई॥
राम कृष्ण औतार अनेका। लखेहु चरित्र एक ते एका॥
ब्रह्मादिक ब्रह्मांड अपारा। उद्भव प्रलय लखेहु बहु बारा॥
सुर मुनि सिद्ध प्रबल कोउ होई। महाप्रलय महँ बचत न कोई॥
रवि शशि पवन जलद जन जेते। क्षोभित होहिं प्रलय महँ तेते॥
उदय अस्त गिरि सब जरि जाहीं। तुम केहि हेतु लहत दुख नाहीं॥
सहित कल्पतरु तुम अविनाशी। कारण कौन कहहु सुख राशी॥
सुनि मुनि बचन हर्ष हिय कागा। परम रहस्य कहन निज लागा॥

॥ दोहा ॥

सुनु मुनि मारत मृत्यु जेहि, अरु जेहि मारत नाहिं।
तेहि लक्षण संक्षेप महँ, प्रगट कहौं तुम पाहिं॥

॥ चौपाई ॥

गुण वासना गुथित दुख मोती। जेहि हिय माल मृत्यु तेहि होती॥

जेहि हिय महँ यह माल न होई। तेहि कहुँ मारि सकत नहिं कोई॥
तन तरु महँ चित सर्प निवासा। जेहि न दहत कहुँ पावक आसा॥
सो न मृत्यु वश होत गोसाईं। रहत निराश अकाश कि नाईं॥
राग द्वेष विषमय चित व्याला। तृष्णा से दलि जात बिशाला॥
लोभ व्याधि सन ग्रसित जो कोई। भ्रम करि होत मृत्यु वश सोई॥
तन समुद्र बड़वानल क्रोधा। दहत न जौन अमर सोइ योधा॥
जेहि मति थिर आतम पदमाहीं। मृत्यु कबहुँ तेहि मारति नाहीं॥
काम क्रोध मद लोभ बिमोहा। भ्रम तृष्णा चिंता भय द्रोहा॥
चंचलता अभिमान प्रमादा। जेहि उर विविध बिकार बिषादा॥
इंद्री देह आपु कहँ लेखै। ताकहँ मारति मृत्यु बिशेखै॥
काम क्रोध लोभादिक रोगा। परसत जेहि न विषय सँयोगा॥
लेत देत कृत कारय नाना। परसत चित न देह अभिमाना॥
इष्ट अनिष्ट राग अरु द्वेषा। रहित होत सम चित्त विशेषा॥
त्रिगुणात्मक अहंकार बिचारी। भ्रम तजि शेष रहै उर धारी॥
गुनि स्वरूप दृढ़ निश्चय जेहि। मृत्यु न मारि सकति कहुँ तेही॥

॥ दोहा ॥

त्रिभुवन सुर नर नाग गण, वैभव भोग विलास।
सकल असत भ्रमरूप जग, अंत लहत सब नास॥
श्रेष्ठ न कछु तिहुँलोक महँ, धन गुण बल बुधि रूप।
जहाँ रमत मन संत कर, है सोइ श्रेष्ठ अनूप॥

॥ सोरठा ॥

विश्व सकल चल रूप तहँ न रमत मन संतकर ।
आतम अचल अनूप शांत रहत तहँ पुरुषवर ॥

॥ चौपाई ॥

मगन जे आतम के सुख माहीं । बहुत जियन की रुचि तेहि नाहीं ॥
केवल आत्म चिंतना जोई । सब सन श्रेष्ठ जगत महँ सोई ॥
जेहि पाये सब दुख मिटि जाहीं । जन्ममरण भय शोक नशाहीं ॥
बहु सखि तासु एक तिन्ह माहीं । जाहि मिलै तेहि सम कोउ नाहीं ॥
कोटि जन्म पथ थकित प्रयासा । हरै त्रास तृष्णादिक प्यासा ॥
आत्म चिंतना सखी अनेका । तिन्ह महँ प्राप्त भई मोहिं एका ॥
जन्म मरण भव दुख हरि लेनी । जीवन मूल सकल सुख देनी ॥
प्राण चिंतना नाम बखाना । सुनि कह पुनि मुनि तत्व सुजाना ॥
सत्य कहहु अब तत्व सनेही । कहत प्राण चिंता तुम केही ॥
कह भुशुंडि प्रभु अस किन कहहू । तुम सर्वज्ञ जगत गुरु अहहू ॥
पै तुम्हार सुनि प्रश्न गोसाईं । शुभ गुनि कहौं शिष्य की नाईं ॥
जो भुशुंडि जीवन कर हेतू । अरु आतम गति दानि सचेतू ॥
हौं नित करत धारणा जेही । कहियत प्राण चिंतना तेही ॥
यहि सु दृष्टि कर आश्रय करिकै । लहेउँ परमपद भवनिधि तरिकै ॥
परत उठत अरु बैठत वा गत । क्रिया करत सब सोवत जागत ॥
सब थल मम चित रहत सचेता । बन्ध न कछू मोहिं यहि हेता ॥

॥ दोहा ॥

प्राण अपान प्रयोग ते, उपज्यो आतम ज्ञान ।
ताते रहित विकार नित, रहौं सुखी निर्वान ॥
जेहि गति प्राण अपान की, प्राप्त भई तदरूप ।
करै तजै चह कर्म सब, पर वह शान्त स्वरूप ॥

॥ चौपाई ॥

प्राण हृदय सन उपजत भाई । बाहर अंगुल बाहेर जाई ॥
तहँ थिर ह्वै अपान फिरि सोई । आय हृदय महँ इस्थिर होई ॥
जो बाहेर नभ सन्मुख जाता । प्राण सो होत अग्नि इव ताता ॥
हिय अकाश महँ आवत जोई । होइ नदी इव शीतल सोई ॥
बाहेर से उर आव अपाना । चन्द्ररूप सोइ शीतल जाना ॥
हिय सन बाहेर जात जो प्राणा । उष्ण अग्नि रवि रूप प्रमाणा ॥
हिय नभ प्राण तपावत रहई । अरु जल अन्न पचावत अहई ॥
हिय नभ शीतल करत अपाना । सरितधार अरु चन्द्र समाना ॥
जब अपानरूपी शशि आई । प्राणरूप रवि माहिं समाई ॥
हैं तहँ साठि तत्त्व तेहि माहीं । मन थिर भये लहत दुख नाहीं ॥
जबहिं प्राणरूपी रवि जाई । सोइ अपान शशि माहिं समाई ॥
तहँ मन जोऽपि रहै अनुरागी । होइ न जन्म मरण कर भागी ॥
प्राण जो सूर्य भाव निज त्यागा । शशि अपान महँ जाइन लागा ॥
तेहि गति केर देश अरु काला । किये बिचार मिटहिं भ्रम जाला ॥

शशि अपान निज भाव बिहाई। प्राण सूर्य जब लगि न समाई॥
तब तेहि मध्य अवस्था माहीं। लीन भये मन उपजत नाहीं॥

॥ दोहा ॥

प्रेरक प्राण अपान कर, सत चित आनँद रूप।
जो जानै तेहि आतमहिं, सो न परै भवकूप॥

॥ चौपाई ॥

प्राण अपान हृदय नभ माहीं। रवि शशि अथवत उवत सदाहीं॥
तेहि प्रकाश सन आतम देवहि। जे मुनि लखहिं सदा पद सेवहि॥
ते दृगवंत धन्य जग माहीं। लखि ऊपर रवि कछु सिधि नाहीं॥
हरत तिमिर रवि बाहेर केरो। करत न भीतर नेक उजेरो॥
यह उर अंतर उदित प्रकाशा। अति अज्ञान तम करत बिनाशा॥
जन्म मरण भय भ्रम मिटि जाहीं। मन स्वरूप महँ जगत सदाहीं॥
प्राण अपान सूर्य शशि दोई। अथवत उवत यत्न बिन सोई॥
उरसन उपजि प्राण रवि जबहीं। मिलत अपान चन्द्र महँ तबहीं॥
अरु अपान शशि ह्वै क्षण ताहीं। मिलत सो आइ प्राण रवि माहीं॥
प्राण अस्त भय उअत अपाना। अरु अपान अथए फिरि प्राना॥
अथवत उवत धूप तम जैसे। प्राण अपानहु की गति तैसे॥
हिय सन उवत प्राण कर श्वासू। होन लगत तब रेचक तासू॥
अरु अपान कर पूरक होई। प्राण शशिह मिलि कुंभक सोई॥
तेहि कुंभक महँ जो थिर होई। तौ तिहुँ ताप तपै नहिं सोई॥

जब अपान कर रेचक होई। पूरक होत प्राण कर सोई॥
थिरत अपान प्राण महँ जबहीं। होत प्राण कर कुंभक तबहीं॥
तेहि कुंभक महँ चित थिर होई। तब तेहि शोक न व्यापत कोई॥

॥ दोहा ॥

भीतर प्राण अपान के, आतम शान्त स्वरूप।
तेहि महँ चित थिर होइ जेहि, सो न परै भवकूप॥

॥ चौपाई ॥

जब अपान हिय इस्थित होई। प्राण उदय न भयो तब जोई॥
तेहि चण साची शुद्ध स्वरूपा। है सोइ आतम तत्व अनूपा॥
तेहि महँ जो चित इस्थित होई। तौ तेहि दुःख न व्यापत कोई॥
बाहर जाइ होइ थिर प्राना। जब लग उदय न होइ अपाना॥
है तहँ देश काल गति जोई। मन थिर भये न उपजत सोई॥
प्राण अपान बिपे थित होई। उअत अपान न कुंभक सोई॥
तिमिहिं अपान प्राण मिलि दोऊ। उवन प्राण नहिं कुंभक सोऊ॥
तिन महँ तत्व शान्त चित जोई। आत्म स्वरूप शुद्ध नित सोई॥
तेहि महँ जाइ मिलै जो कोई। सो फिरि शोकवान नहिं होई॥

॥ दोहा ॥

जिमि प्रसून महँ गंध सन, होत प्रयोजन साज।
तिमि दुहुँ प्राण अपान बिच, अनुभव से निज काज॥

॥ चौपाई ॥

परम सचेतन अनुभव सोई। प्रेरक प्राण अपान न कोई॥
करहिं महामुनि चिंतन जासू। हम नित करत उपासन तासू॥
प्राण अपान कोट क्षय होई। प्राण कोट महँ क्षय जब सोई॥
प्राण अपान मध्य अविनासी। चिदानंद हम तासु उपासी॥
प्राणक प्राण अपान अपानां। जीवक जीव ज्ञान कर ज्ञाना॥
त्रिबिध देह कर जौन अधारा। सो चिदात्मा इष्ट हमारा॥
जेहि महँ सर्व सर्व जेहि सेहीं। जो यह सर्व भजत हम तेहीं॥
सकल प्रकाश प्रकाशक कोई। सब पावन कर पावन जोई॥
भरत अभाव वस्तु है व्यापा। अहै आप कर आपन आपा॥
अनुभव मात्र चिदातम रूपा। सोइ हमार अपि इष्ट अनूपा॥
जो हिय सम्पुट प्राण अपाना। तेहि बिच साक्षी रतन समाना॥
भीतर बाहेर सब थल जोई। परमातमा इष्ट मम सोई॥
जब उर अथवत आय अपाना। जब लग उदय होत नहिं प्राना॥
तेहि क्षण शुद्ध हृदय आकाशा। निःकलंक निरुपाधि निराशा॥
चेतन तत्त्व शांत चित जोई। परमातमा इष्ट मम सोई॥
तैसहि अस्त होत जब प्राना। जब लग उपजत नाहिं अपाना॥
नासा अग्र शुद्ध नभ जोई। तेहि महँ जौन सत्यता होई॥
सोइ सत चेतन मात्र प्रकासू। हम नित करत उपासन तासू॥

॥ दोहा ॥

जो प्रभु प्रान अपान के, उत्पति कर अस्थान ।
भीतर बाहेर सर्वदिशि, व्याप्त चैतन्य महान ॥
चिदानंद अद्वैत सब, योग कला आधार ।
हम तेहि करत उपासना, यह सिद्धान्त हमार ॥
प्राण अपान विमान पर, जो प्रेरक आरूढ़ ।
सर्वशक्ति कर शक्ति जोइ, सो मम इष्ट निगूढ़ ॥
सो सब कला कलंक बिन, सकल कला आधार ।
अंत अमर जेहि शरणागत, सो सत इष्ट हमार ॥

॥ चौपाई ॥

यहि विधि हौं लहि प्राण समाधी । लह्यों आत्म पद नित निरुपाधी ॥
निर्मल दृष्टि अधार गोसाईं । अचल रहौं सुमेरु की नाईं ॥
जागत सोवत सपनेहुँ माहीं । चलत रहौं थिर रूप सदाहीं ॥
आत्म योग महँ मगन निरंतर । होत वियोग न कहुँ उर अंतर ॥
अग जग तजि अंतर्मुख अहऊँ । आपन आपहि महँ थिर रहऊँ ॥
कहेउँ जो प्राण अपान प्रवाहू । सो बिन यत्न समाधि अथाहू ॥
हौं तेहि माहिं सुखी नित रहऊँ । इष्ट कृपा कछु कष्ट न लहऊँ ॥
जेहि यह कला प्राप्त नहिं होई । तेहि भव कष्ट मिलत बहु सोई ॥
महा प्रलय तक सो अज्ञानी । भवनिधि मगन रहै जड़ प्रानी ॥
जो श्रम करि आतम पद पाया । सो सुख से भव बीच न आया ॥

भूतकाल कर शोच न मोहीं। अरु भविष्य इच्छा नहिं होहीं ॥
यथा प्राप्त रत द्वेष न चहऊँ। वर्तमान महँ बिचरत भयऊँ ॥
भाव अभाव पदार्थ बिहीना। सिर्फ स्वरूप रहौं लौ लीना ॥
प्राण अपान कला सम करिकै। रहौं स्वरूपहि मे चित धरिकै ॥
ताते जियत सुखी बहु काला। मोहिं न व्यापत भव भ्रम जाला ॥
आजु मिल्यो कछु मिलिहै काली। यह चिन्ता भव बन्धन वाली ॥
सो मम हृदय फुरत कहुँ नाहीं। ताते जियत सुखी जग माहीं ॥
इष्ट अनिष्ट मिलै जो कोई। राग द्वेष मम हृदय न होई ॥
निन्दा काहु करौं कहुँ नाहीं। आत्म स्वरूप लखौं सब काहीं ॥
परम त्याग किय निज सुख पाई। मिटी सकल मन की चपलाई ॥
जानत सम संयोग वियोगा। ताते सुख सन जियत अरोगा ॥

॥ दोहा ॥

दारु सु दारा लोष्ठ धन, अपमानहु सनमान।
जरा मरण दुख राज सुख, जानौं सकल समान ॥
मैं यह मम बान्धव इतर, कछु कलना मोहिं नाहिं।
विषय देह अहमित रहित, जियत सुखी जग माहिं ॥
जिमि दर्पण महँ गिरिसरित, देखि परत दुहु छाहिं।
तिमि मोमे संसार पर, बरसत भीजत नाहिं ॥
हौं दश अनहद ते परे, भीन शब्द महँ लीन।
जिमि नभ मुँह शशि पै निकट, निज सम जानत मीन ॥

॥ चौपाई ॥

हौं जग ओर सुषुप्ति स्वरूपा । जगत सदा मिलि आत्म अनूपा ॥
हौं नित हँसत जगत गति देखो । है नहिं यह आश्चर्य विशेखी ॥
सर्वकाल सब विधि सब माहीं । हौं सम बुद्धि विषमता नाहीं ॥
कर फैलाय सकोचिय जैसे । आपुहि गुन्यो आतमहि तैसे ॥
नख शिख तन ममता मोहिं नाहीं । ताते जियत सुखी जग माहीं ॥
इन्द्रिय कार्य करत लखि परऊँ । उर अंतर तेहि कर्म न धरऊँ ॥
मोहिं न परसत विषय विकारा । हौं अहंकार पंक सन न्यारा ॥
राग द्वेष नहिं सुख दुख माहीं । चित आसक्त होत कहुँ नाहीं ॥
सब भ्रममात्र असत संसारा । सत्य स्वरूप आत्म अविकारा ॥
यह दृढ़ जानि अहौं अविनासी । बाधत मोहि न आश की फाँसी ॥
जगत असत आत्महि सत जाना । मोहिं प्रत्यक्ष कर बदर समाना ॥
दुखी सुखी नहिं दुख सुख पाई । रहौं शान्त निज बोध समाई ॥
सब कर परम मित्र मैं अहऊँ । ताते जियत सुखी नित रहऊँ ॥
हौं चित अचल आपदा माहीं । अरु संपदा विषे प्रिय आहीं ॥
नहिं परिछिन्न अहं नहिं कोई । नहिं त्रिपुटी नहिं एक न दोई ॥
नहिं कोउ मोर न हौं मैं काऊ । ज्यों का त्यों सम भाव अभाऊ ॥
हौं कछु नाहिं कि हौं सब रूपा । अहंकार नभ आदि स्वरूपा ॥
लखि सुनि गुनिय कहिय जहँ ताईं । महि सब निर्मल गगनकि नाईं ॥
घट पट रथ सब चेतन कैसे । जलहि बीचि बुलकादिक जैसे ॥
यह निश्चय दृढ़ मोहिं सदाहीं । ताते जियत सुखी जग माहीं ॥

॥ दोहा ॥

हौं जिमि आतम पद लह्यों, कह्यों सो तिमि तुम पाहिं ।
सु गुरु सु शिष्य सु मित्र सन, तत्त्व कहव शक नाहिं ॥
सुनि मुनि कह मैं धन्य जग, तुम पुनि धन्य महान ।
तव दरशन त्रिभुवन अगम, लहेउँ सो आजु सुजान ॥
सुरपुर नरपुर नागपुर, तुम समान कोइ कोइ ।
जिमि जग महँ बहु बेनु बन, मुक्ता युत कोइ होइ ॥
अस कहि ताहि प्रशंसि बहु, माँगि बिदा शिर नाय ।
उड़ि वसिष्ठ सप्तर्षि महँ, भये सु शोभित जाय ॥
कागभुशुण्डि वसिष्ठ कर, यह सम्वाद अनूप ।
कहि सुनि गुनि जो हिय धरै, सो न परै भवकूप ॥

॥ सोरठा ॥

सुनि गुरु मुख श्रीराम यह भुशुंडि गीता सुखद ।
लहे परम विश्राम सो वरणे जगदीश गुनि ॥

॥ श्रीज्ञानदिवाकरे भुशुंडिगीतायां आत्मयोगवर्णनो
नामाष्टमो कला शुभम् भूयात् ॥

---o---

अथ परमार्थगीता तथा वसिष्ठगीता नवम कला प्रारंभः

—+०❀०+—

॥ दोहा ॥

बन्दौं ब्रह्म बसिष्ठ गुरु, शिष्य रूप श्रीराम ।
आपुहि आप स्वरूप सुख, हेतु उभय अभिराम ॥

॥ चौपाई ॥

कह वसिष्ठ मुनि सुनु रघुराया । आत्म एक अद्वैत अमाया ॥
जग के आदि कहत श्रुति सही । शुद्ध ब्रह्म सत्ता सोइ रही ॥
सोइ महँ फुरेउ जगत आभासा । जल तरंग जिमि भानु प्रकासा ॥
यथा आदि अनुभव आकासा । तेहि महँ स्वप्न जगत फुरि भासा ॥
अनुभव बपु सोइ स्वप्न अनूपा । तथा जगत सोइ ब्रह्म स्वरूपा ॥
शुद्ध ब्रह्म सत चेतन ताईं । जगत रूप कछु भेद न भाई ॥
वास्तव महँ कछु दुख सुख नाहीं । यह भ्रम करि भासत मन माहीं ॥
नींद दशा महँ जिमि बुध कहहीं । स्वप्न सुषुप्ति भेद दुइ अहहीं ॥
तस अज्ञान अवस्था माहीं । दुख सुख वृत्ति उभय विधि आहीं ॥
ज्ञानिहि ब्रह्म रूप सब भासा । विश्व असत गुनि करहि न आसा ॥
जिमि निद्रा सन जागत जोई । स्वप्न सुषुप्ति असत तेहि होई ॥
सम दरशिह जग भासत कैसे । रवि सुजान कहँ मृगजल जैसे ॥
अज्ञहि जगत स्वप्न इव लागै । ताते वस्तु गहै अरु त्यागै ॥
परमातम महँ जग पक भाऊ । जल तरंग जिमि भेद न काऊ ॥

सहज अविद्यमान जो अहई। श्रुति न अविद्यहि कारण कहई ॥
ब्रह्म अभास मात्र है सोऊ। जगत अविद्या एकहि दोऊ ॥
आपु अभास मात्र जो होई। तेहि जग कारण कहै कि कोई ॥
स्वप्न सृष्टि महँ घट बनि जाहीं। रचत कुलाल मृत्तिका नाहीं ॥
घट अन्यासहि भासत जैसे। भास कुलाल मृत्तिकहु तैसे ॥
सकल अभास यकत्रहि होई। तैसहि जगत अविद्या दोई ॥
जगत अविद्या ब्रह्म सन दोऊ। संगहि फुरत रूप तेहि सोऊ ॥
है न अविद्या जगत न कोई। आतम सत्य यथा स्थित सोई ॥

॥ दोहा ॥

निर्विकल्प महँ जगत कर, होत अत्यंत अभाव।
विचरत जीवन्मुक्त सोइ, सम्यक् बोध प्रभाव ॥
आतम कहँ अद्वैत अरु, जगत अभाव अत्यंत।
यह जानब समबोध सोइ, मोक्ष कहहिं सब संत ॥

॥ चौपाई ॥

जहँ यक द्वैत फुरन नहिं रहई। सोइ निर्वाण परमपद अहई ॥
जहँ पुनि फुरत न एकहु बानी। सर्व शब्द कर अंत बखानी ॥
सोइ पद पावन केर उपाऊ। तुम सन तात कहौं सत भाऊ ॥
अर्ध प्रबुध गति इच्छा जेही। यह मम ग्रंथ सुखद अति तेही ॥
शुभाचार बुधि निर्मल करई। तत्त्व बिचारि सुमति दृढ़ धरई ॥
नित चितलाई गुनै यहि जोई। लहै आतमपद आतुर सोई ॥

मोक्ष शास्त्र कर किये विचारू । जो फल लहत जीव जगचारू ॥
सो पद मिलत न आन उपाऊ । मिलत स्वर्ग सतकर्म प्रभाऊ ॥
निराकार सत चेतन जोई । जगत रूप है भासत सोई ॥
जल तरंग जिमि पवन स्पंदा । तिमि जग रूप सच्चिदानंदा ॥
जिमि स्पंद निस्पंदह माहीं । रहत यथास्थित वायु सदाहीं ॥
पै स्पंद भये भासत सोई । नहिं भासत निस्पंद जो होई ॥
तिमिहि फुरत सम्वेदन जवहीं । ब्रह्म जगत इव भासत तवहीं ॥
निर्वेदन भये जगत न रहई । सोइ तिहुँकाल एक रस अहई ॥
ताते सब जग ब्रह्म स्वरूपा । तेहिते इतर न कछु नर भूपा ॥
इतर ब्रह्म सन भासै जोई । गुनि भ्रममात्र बिसारै सोई ॥
जवहिं आत्मपद भासै भाई । तव सब भ्रान्ति शान्ति ह्वै जाई ॥
आत्म वोध भये भ्रम मिटि जाई । भानु उदय जिमि तिमिर नशाई ॥
यद्यपि सृष्टि लखिय विधि नाना । तदपि असत सब स्वप्न समाना ॥
परमात्मा सत्यता एका । भासत जगत्त अकार अनेका ॥
अनुभव रूप जगत यह कैसे । रत्न चमक महँ भेद न जैसे ॥
भव भव विभव पराभव जोई । एक ब्रह्म की संज्ञा होई ॥
ब्रह्म इतर कछु दूसर नाहीं । यह निश्चय राखहु मन माहीं ॥

॥ दोहा ॥

भासत जो आकार सब, सो सम्वेदन रूप ।
आदि अंत अद्वैत जोइ, मध्यहु सोइ अनूप ॥

जिमि सपने के आदि महँ, शुद्ध सु सम्वित होइ।
तेहि महँ भासत पिंड बपु, अनुभव रूपहि सोइ॥
कछु न बन्यो यक आत्महि, भासत पिंडाकार।
सम अविकार अकाश बपु, भ्रम से भास विकार॥
जिमि सपने की सृष्टि निज, अनुभव रूप अनेक।
तिमि अज्ञान से जगत बहु, ज्ञान भये सब एक॥

॥ चौपाई ॥

जगत प्रत्यक्ष परत लखि जोई। पै तेहि गुने न कारण कोई॥
समुझे मिलत न कारण जासू। तेहि जानिय भ्रममात्र अभासू॥
कारण से कारज तब होई। जब कछु वस्तु पदारथ कोई॥
जिमि पितु की संज्ञा तब होई। जब जेहि पुत्र होइ फुरि कोई॥
जब न पुत्र तब पितु केहि कहिये। तिमि जग तत्त्व समुझि मन रहिये॥
कारण कहिय जो कारय होई। कारय रूप जगत नहिं कोई॥
तौ आत्महि किमि कारण मानी। कारण कार्य कहत अज्ञानी॥
बालक भ्रमहि भ्रमत जग कहहीं। कारण कार्य अज्ञ तिमि गहहीं॥
ज्ञानिहि कारण कार्य न भासा। स्मृति आदि अनुभव आभास॥
जिमि रवि महँ भासत बारी। तिमि आतम महँ सृष्टि विचारी॥
घट भासत जिमि सपने माहीं। मृतिका कारण कहिय तो नाहीं॥
घट मृतिका यकत्र फुरि आये। दोउ आभास मात्र ठहराये॥
कहिय कौन केहि कारण काजा। सब यक ठौर फुरे जग साजा॥

तातें सब जग रूप अकासा। जानिय सकल आत्म अभासा॥
दृग कर खोलब मूँदब जैसे। भय भव प्रलय आत्म महँ तैसे॥
फुरत चित्त सम्वेदन जबहीं। जगत रूप ह्वै भासत तबहीं॥
जब चित रहित फुरन ते होई। तब आकार न भासत कोई॥
जग उत्पत्ति प्रलय के माहीं। आत्म यथास्थित रहत सदाहीं॥
मुंदब खुलब जिमि नैन सुभाऊ। तिमि फुर अफुर ब्रह्म कर भाऊ॥
पवन सुभाव चला चल जैसे। सम्वेदन जग की गति तैसे॥
जैसे एकहि अनुभव माहीं। स्वप्न सुषुप्ति नाम कहि जाहीं॥
भासत जगत सपन के माहीं। अरु सुषुप्ति महँ भासत नाहीं॥
पैदुहुँ महँ यक अनुभव अहई। सो दुहुँ दशा न दुख सुख गहई॥
तिमि सम्वित के फुरे जहाना। अफुर भये कछु जाइ न जाना॥
आत्म यथास्थित सोइ जग रूपा। जिमि रवि भास छाँह अरु धूपा॥
तातें सब अकार भ्रम त्यागी। रहिय एक आतम लय लागी॥
आत्म तत्त्व अद्वैत अनूपा। नित सतचित आनन्द स्वरूपा॥
तासों इतर द्वैत जो भासै। सो भ्रम जानि तजिय अभ्यासै॥
मम सिद्धान्त इहै श्रुति साखी। तुमहिं पात्र गुनि मैं यह भाखी॥
किय उपदेश तुमहिं मैं जैसे। युक्ति सहित कोउ कहिहि न तैसे॥
अज्ञ हृदय भ्रम तिमिर विशेखी। मिटिहि जो सुचित शास्त्र मम देखी॥
आत्म विचार रहित नर जोई। जीवत व्यर्थ मृतक इव सोई॥
जेहि उर विमल विचार बढ़ोई। आत्म रूप तेहि सब जग होई॥
यक यक श्वास अमोल जो खोई। तेहि सम त्रिभुवन मूढ़ न कोई॥

आवहिं जाहिं राज धन दोई। श्वास जो गइ फिरि आव न सोई॥
श्वास श्वास प्रति गुनिय स्वरूपा। अकथ अनादि अनन्त अनूपा॥
आयु तडित इव ह्वै मिटि जाई। तन सुख आश करहु जनि भाई॥
भास सत्य इव जग आभासा। तउ जानिय यहि असत तमासा॥

॥ दोहा ॥

यथा सपन की सृष्टि महँ, जन्म मरणकेहुँ होय।
गावै रोवै सत्य इव, जगे असत सब सोय॥
तथा जगत व्यवहार सब, भ्रान्ति मात्र गुनि लेहु।
केवल सतचित आत्मा, जानिय तजि संदेहु॥
गुरु वसिष्ठ श्रीराम कर, यह सम्बाद अनूप।
कहै सुनै गुनि हिय धरै, सो न परै भवकूप॥
परमारथ गीता रुचिर, सो वरण्यो जगदीश।
भवसागर कुंभज सरिस, अर्थ समुझि जोलेव॥

॥ श्रीज्ञानदिवाकरे वसिष्ठरामचन्द्रसंवादे परमार्थगीता तत्त्वनिरूपण ब्रह्मजगत् अभेदतावर्णन नवमी कला शुभम् भूयात्॥

❀ अथ रामगीता दशमी कला प्रारम्भः ❀

—⁓⁓❀⁓⁓—

॥ दोहा ॥

क्षर अक्षर पर पुरुष वर, जौन निरक्षर देव ।
सुमिरि राम गीता कहत, करि भाषा जगदीश ॥
प्रथम उमापति कहि सकल, रघुपति चरित गंभीर ।
ब्रह्म ज्ञान पुनि अल्प महँ, कहन लगे मति धीर ॥

॥ चौपाई ॥

जे जग मङ्गल मङ्गल रूपा । रघुकुल उत्तम राम अनूपा ॥
ते रामायण कीरति द्वारा । करि निज सुयश विश्व विस्तारा ॥
पूर्व राज ऋषि वर्यन्ह केरे । सेवित धर्म किये बहुतेरे ॥
पुनि उदार बुधि लक्ष्मण पासा । कहे पुराण धर्म इतिहासा ॥
नृप नृग दान भ्रान्ति सन दयऊ । विप्र शाप लहि गिरगिट भयऊ ॥
बहु इतिहास कहे प्रभु सोई । आत्मज्ञान बिन मोक्ष न होई ॥
यक दिन राम पूर्ण अवतारा । सिय संग रहे एकान्त अगारा ॥
तेहि क्षण लषण ज्ञान अनुरागे । प्रभु पद बन्दि कहन अस लागे ॥
तुम प्रभु निर्मल ज्ञान स्वरूपा । अन्तरात्मा ईश अनूपा ॥
वास्तव महँ तुम रहित अकारा । व्यापक अलख अखण्ड अपारा ॥
पै निज भक्तन भक्तन काहीं । ज्ञान दृगन लखि परत सदाहीं ॥
प्रभु तुम्हार पद पङ्कज जोई । है संसार निवर्तक सोई ॥

योगी जोग ध्यान जेहि गहहीं। हम तिनके शरणागत अहहीं ॥
नाथ अविद्या सिन्धु अपारा। दै उपदेश करिय दुख पारा ॥
लखण वचन सुनि जन दुख हारी। आनँद निधि प्रभु भये सुखारी ॥
अगम अविद्या भ्रम तम नाशक। कहे बचन हिय कमल विकाशक ॥
राज ऋषिन्ह कर भूषण जोई। करन लगे अनुशासन सोई ॥

॥ दोहा ॥

आदि स्ववर्णाश्रम क्रिया, करि अकाम चित शुद्ध।
तेहि तजिकै पुनि ज्ञान हित, सेवै गुरुहि सुबुद्ध ॥

॥ चौपाई ॥

बनी क्रिया तन उत्पति हेता। राग द्वेष अघ पुण्य समेता ॥
पाप पुण्य सन बारहिं बारा। उपजत देह आइ संसारा ॥
उपजे देह क्रिया फिरि होई। यहि विधि भ्रमत चक्र इव सोई ॥
विश्व मूल भ्रम हेतु अविद्या। तेहि तजि सेइय आतम विद्या ॥
कर्म अविद्यहि करत न नाशू। पाप पुण्य फल जानहु ताशू ॥
कर्म किये फल कर्महि होई। ताते फिरि उपजत भव सोई ॥
ताते कर्म काम सह त्यागी। ज्ञानी रहत ज्ञान अनुरागी ॥
यहि प्रकार सुनि रघुबर वाणी। बोले लषण जोरि युग पाणी ॥
अग्निहोत्र आदिक मख दाना। नाथ क्रिया सब वेद बखाना ॥
निन्दित कर्म भयो केहि कारण। कहि संशय मम करहु नेवारण ॥
कह प्रभु तात नरन हित जोई। बरणे वेद कर्म सुनु सोई ॥

करि निःकाम कर्म स विधाना। करै शुद्ध चित उपजै ज्ञाना ॥
श्रुति दूषित किय कर्मन्ह काहीं। गुनि बुधि कर्म अकाम कराहीं ॥
ब्रह्म ज्ञान निश्चित फल दाता। कर्म अपेक्षा करत न ताता ॥

॥ दोहा ॥

पै प्रतिबादी यह कहत, कर्म सनातन आय।
सकल अङ्ग मिलि ज्ञान की, करत अवश्य सहाय ॥
कोउ वितर्क बादी कहत, ज्ञान कर्म मिलि दोउ।
होत मुक्ति के हेतु पर, जानहु सत्य न सोउ ॥

॥ चौपाई ॥

केवल कर्म न गति प्रद जैसे। ज्ञान कर्म मिलि होहिं न तैसे ॥
तासु हेतु जग दृष्टि विरोधा। तेहि कारण निज मत हम शोधा ॥
अन आतम देहादिक माहीं। मानि आत्म अभिमान सदाहीं ॥
अहङ्कार सन क्रिया अविद्या। निरहङ्कार से उपजति विद्या ॥
अहङ्कार अरु निरहंकारा। दुहुँ कर मिलन बिरुद्ध बिचारा ॥
ये दुहुँ मिले मुक्ति नहिं होई। ज्ञान स्वतन्त्र मोक्षप्रद सोई ॥
शुचि विज्ञान जनक श्रुति वानी। गुणि मति सर्व शेष हिय जानी ॥
जो हिय भाव ब्रह्म मय होई। विद्या नाम कहावति सोई ॥
कर्म मखादिक अङ्ग समेता। होत सहित मन फल कर देता ॥
विद्या मनहिं कर्म सह अङ्गा। नष्ट करत जिमि तिमिर पतङ्गा ॥

तातें विद्या उपजत काला। कर्म अपेच्छा करत विशाला॥
कर्म किये चित शुद्ध महाना। चित्त शुद्ध भये उपजत ज्ञाना॥
किन्तु ज्ञान फल मोच्छ जो होई। कर्म अपेच्छा करत न सोई॥
विद्या ज्ञान कर्म अज्ञाना। दुहुँ मिलि मुक्ति न सिद्ध बखाना॥
तातें मु मुनि कर्म परिहरहीं। चित्त शुद्ध लगि नित कृत करहीं॥
तेहि पीछे सब कर्म विहाई। इन्द्रिन विषयन सन बिलगाई॥
आत्महि परम प्राप्त धन जानी। तेहि विज्ञान मगन रह ज्ञानी॥
जब लग प्रकृति अविद्या द्वारा। जिव अनात्म महँ कर अहङ्कारा॥
तब लग सविधि कर्म नित करई। अहं बुद्धि रस रस परिहरई॥
पुनि श्रुति महा वाक्य के द्वारा। गुनि अनित्य जानै संसारा॥
यहि जग ते पर सत्य स्वरूपा। परमात्मा अनाम अरूपा॥
यह दृढ़ जानि मगन जब होई। तब सब कर्म तजै आप सोई॥
जब चित शुद्ध भये पर ज्ञाना। होय उदय हिय भानु समाना॥
तब भव मूल भेद भ्रमराती। मिटहिं जन्मप्रद कर्म अराती॥
जबहिं अविद्या निशा नशाई। तब भव कर्म सपन भ्रम जाई॥
जो श्रुति वाक्य ज्ञान के द्वारा। मिटी अविद्या भ्रान्ति अपारा॥
तौ फिरि होति न समरथ सोई। जिमि रजु चीन्हि न अहि भ्रमहोई।
यदि माया मिटि उपज न सोई। तौ अहंकार कदापि न होई॥
तातें विद्या मोच्छहि देता। आपु बिभाति स्वतन्त्र सचेता॥
सह अहँकार कर्म कृत जेते। श्रुति ऋषि त्याज्य कहे सब तेते॥
तजि अहँकार सधत तब ज्ञाना। तातें यह विपरीत बखाना॥

॥ दोहा ॥

हम पापी हम पुण्य कृत, यह आत्मा बुधि नाहिं ।
अज्ञानिन्ह के कर्म गुनि, ज्ञानी त्यागत ताहिं ॥
श्रद्धायुत ह्वै शुद्ध चित, समुझि तत्त्वमसि सोउ ।
गुरु प्रसाद तें बोध लहि, अचल मेरु इव होउ ॥
तात तत्त्वमसि वाक्य महँ, तत् त्वं असिपद तीन ।
तिनके अर्थ विचारि दृढ़, होहु स्वरूपहि लीन ॥
तत् परमात्मा जीव त्वं, असिपद बोधक एक ।
मनन करै नित तत्त्वमसि, उपजै विमल विवेक ॥

॥ चौपाई ॥

परम तत्त्वमय सुनि प्रभु वाणी । कह पुनि लषण जोरि युग पाणी ॥
प्रभु सर्वज्ञ ब्रह्म जगदीशा । किंचितज्ञ जड़ जीव अनीशा ॥
ब्रह्म जीव किमि होहिं समाना । सुनि बोले पुनि कृपा निधाना ॥
सर्वज्ञता ईशता जोई । भाव ब्रह्म कर त्यागै सोई ॥
जीव जड़ किंचितज्ञता त्यागी । चिद आत्मत्व रहै लय लागी ॥
अहंकार द्वै भेद जो करई । तेहिं भ्रममात्र जानि परिहरई ॥
सम चिन्मात्र शेष रह जोई । परमात्मा तत्त्व यक सोई ॥
जहत स्वार्थ लक्षण न इहाहीं । अजहत स्वार्थ लक्षणा नाहीं ॥
तजि उपाधि यक आत्महि गहई । यह निर्दोष लक्षणा अहई ॥
पंचभूत गगनादिक केरे । पँच विषय शब्दादि निवेरे ॥

ज्ञान कर्म इन्द्रिय दश वरणा । मन सहचारौ अन्तःकरणा ॥
चारि अवस्था युत श्रुति कहहीं । अट्ठाइस पंचीकृत अहहीं ॥
इन सब मिलि संभव तनु येहू । पाप पुण्य फल दुख सुख गेहू ॥
जन्ममरण भोक्ता बहु व्याधी । यह आत्मकऽस्थूल उपाधी ॥
पंच ज्ञान कर्मेन्द्रिय पंचा । पंच प्राण मन बुद्धि प्रपंचा ॥
इन सत्रह युत सूक्ष्म देही । लिंग शरीर कहत पुनि तेही ॥
थूल देह महँ दुख सुख भोगी । कहत मरण जब होत वियोगी ॥
ताते बुध सूक्ष्म तन काहीं । थूल देह सन भिन्न कहाहीं ॥
तीसर कारण देह कहाई । तासु रूप अब कहौं बुझाई ॥
सो अनादि गुणमय कमनीया । अरु सत असत अनिर्वचनीया ॥
माया वपु उत्कृष्ट अनूपा । सब सम्पादक ईश्वर रूपा ॥
सूक्ष्म थूल कर कारण जोई । आत्मा कर प्रधान तन सोई ॥
माया कृत उपाधि यह त्यागी । ह्वै निरुपाधि तत्त्व अनुरागी ॥
श्रवण मनन निदिध्यासन द्वारा । क्रमते करिय स्वरूप विचारा ॥
परमात्मा सन अपने काहीं । जान अभेद अभिन्न सदाहीं ॥
पंचकोश महँ जब जेहि संगा । रहत आत्म भासत तेहि रंगा ॥
यथा ज़पा पुष्पादि प्रसंगा । विमल फटिक दरशत बहु रंगा ॥
महा वाक्य जब करिय विचारा । जानि परत तब आतम न्यारा ॥
अन्न मयादि कोश रहि सोई । निर्विकार रह द्वैत न होई ॥
प्राणकोश सँग हम कृत थूला । यह अज्ञानिन्ह की मत भूला ॥
ज्ञानिहि विषये न परसत कैसे । धूम धूरितम नभ कहँ जैसे ॥

॥ दोहा ॥

जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति यह, रज सत तमगुण रूप ।
गुणातीत साक्षी तुरीय, आत्म असंग अनूप ॥
जब लगि तन इन्द्री पवन, मन चित सह अहंकार ।
तब लगि उत्पति हेतु गुनि, तजिय कुबुद्धि विकार ॥

॥ चौपाई ॥

जानि जगत सब मिथ्या रूपा । पियहु सुधा चिद रूप अनूपा ॥
इन्द्रिय विषय आदि जग त्यागी । रहिय उदास शब्द सुख पागी ॥
जिमि नर नार केर रस लेहीं । उपर असार वस्तु तजि देहीं ॥
तिमि जग सार ब्रह्म गुणि लेहू । शेष असार वस्तु तजि देहू ॥
केवल ब्रह्म आत्म नित अहई । जो तिहुं काले एक रस रहई ॥
जन्मत मरत न घट बढ़ होई । पुष्ट न क्षीण होत कहुं सोई ॥
षट विकार सब बस्तुन माहीं । आत्महि नित्य अनित सब आहीं ॥
सर्वोत्तम आनंद अनूपा । स्वयं प्रकाशक व्यापक रूपा ॥
भूत विषय तन इन्द्रिहु सोई । अहं बुद्धि करि जीवहु होई ॥
तेहि तजि द्वैत बस्तु कछु नाहीं । श्रुति कह सोइ अद्वैत सदाहीं ॥
तिमि सुख आत्म ज्ञानमय माहीं । दुख मय भव कर संभव नाहीं ॥
तन कह जौन अहं मम कहई । यह अज्ञान कल्पना अहई ॥
जब हिय होय उदय रविज्ञाना । तबहिं मिटै कारण अज्ञाना ॥
कारण मिटे कार्य बनिशाई । जिमि जाने रज्जु अहि भ्रम जाई ॥

भ्रम वश जान आन कहं आना । तेहि बुध जन अध्यास बखाना ॥
यथा रज्जु महं अहि भ्रम होई । तथा आत्म महं जग भ्रम जोई ॥
आत्म ज्ञान बिन भव भ्रम कैसे । भानु उदय बिन निशि तम जैसे ॥

॥ दोहा ॥

निर्विकल्प माया रहित, ज्ञानानंद स्वरूप ।
निर्विकार परमात्मा, व्यापक नित्य अनूप ॥
तेहि आत्मा चैतन्य ते, फुरेउ अहं अध्यास ।
सोइ सब जगकर हेतु तजि, करिय ज्ञान अभ्यास ॥

॥ चौपाई ॥

सर्व साच्छि आत्मा सन जोई । अहं कल्पना बुधि भ्रम सोई ॥
यह बुधि भये द्वैत भव भासा । यहि परिहरे होत जग नासा ॥
यथा सुषुप्ति अवस्था माहीं । बुधिकर कार्य रहत कछु नाहीं ॥
तथा आत्मानंद स्वरूपा । स्वयं अप्राकृत शुद्ध अनूपा ॥
जगे नींद सन कहत सरेखी । सुख से सोवत रहेउँ विशेखी ॥
यहि विधि वह सुषुप्ति सुख जोई । आत्म सरिस सुख निश्चय होई ॥
वैसेहि होत उदय जब ज्ञाना । तब यहि भाँति परत तेहि जाना ॥
बुद्धि धर्म सन जग संयाता । यह आत्मा कर धर्म न ताता ॥
प्रकृति अनादि अविद्या सेही । बुधि उत्पन्न भई पहिलेही ॥
तेहि बुधि के प्रतिबिम्बहि माहीं । आव स्वरूप आत्म परिछाहीं ॥

वह परमात्म बुद्धि कर साखी । अमल असंग अलग श्रुति भाखी ॥
अंतःकरण धर्म सँग जोई । हम तुम कहत जीव है सोई ॥
अरु परमात्म साक्षि सब माहीं । व्याप्त तथापि जीव वपु नाहीं ॥
नहिं वह आय सकत बुधि माहा । ताते सर्वोत्तम जग नाहा ॥
पै प्रतिबिम्ब अधार अविद्या । जब लय होय चिदातम विद्या ॥
तब प्रतिबिम्बहु लय ह्वै जाई । जीव ब्रह्म एकहि ठहराई ॥
तबहिं जीव परमातम माहीं । स्वल्पहु रहत भेद भ्रम नाहीं ॥
जो आत्मा चिद्बिम्ब स्वरूपा । अरु साक्षी आत्मा अनूपा ॥
अन्तःकरण सहित ढिग वासा । तेहि कारण जानहु अध्यासा ॥
जैसे लोह अग्नि महँ रहई । तजि निज धर्म अनल गुण गहई ॥
तस मन आत्म निकट करि बासा । निज जड़त्व आतम महँ भासा ॥
भो अध्यास भाव तेहि हेता । आतम एक रस परम सचेता ॥
सतगुरु मुख सुनि श्रुतिवर वानी । तेहि गुनि गहिय सत्य दृढ़ जानी ॥
दृश्य रूप सब जग जड़ अहई । ताते उदासीन नित रहई ॥
हम प्रकाश अज अद्वै रूपा । उदय अस्त पर अमल अनूपा ॥
शुद्ध ज्ञानघन नित्य निरामय । सर्व प्रकाशक सर्वा नंदमय ॥
हम अक्रिय अव्यय अविछीना । देशकाल सीमादि विहीना ॥
सदा मुक्त हम अरु सर्वातम । अमित अचिन्त्य शक्ति परमातम ॥
गो अप्राप्त विज्ञान स्वरूपा । रहित विकार अनन्त अनूपा ॥
साध्य सदा जेहि बुध सब कोई । परमात्मा अहैं हम सोई ॥

॥ दोहा ॥

विषय भाव तजि नित्य चित, करै जो आतम योग ।
मिटै अविद्या कर्मसह, औषधि से जिमि रोग ॥

॥ चौपाई ॥

बैठि एकान्त यथा रुचि आसन । तजि इन्द्रियन विषय सह बासन ॥
प्राणायाम शब्द के द्वारा । मन वस करै रहित अहंकारा ॥
दृश्य रूप जग विषय विसारी । रहै अखंड समाधि सुखारी ॥
मन समेत जेहि आतम माहीं । सब संकल्प शांत ह्वै जाहीं ॥
आत्महि सब कर कारण लेखो । भीतर बाहर पूरण देखो ॥
आत्महि सत्य असत संसारा । जिमि जल आपुहि लहर अपारा ॥
जिमि घटादि कारण महि होई । भूषण कारण कंचन सोई ॥
तिमि सर्वत्र ब्रह्म ही जानौ । तेहि बिन दूसर वस्तु न मानौ ॥
सो समाधि के पूर्वहि माहीं । प्रणव स्वरूप गुनहु सब काहीं ॥
जगत वाच्य वाचक ॐकारा । बरणौं अर्थ सहित विस्तारा ॥

॥ सवैया ॥

वाच्य अकार को विश्व है नाम जो जाग्रत साखि बिराट कहाया ।
वाच्य उकार को तेजस नाम जो स्वप्न को साची है सूक्ष्म काया ॥
वाच्य मकार को प्राज्ञ है नाम सुषुप्ति दशा बिस्तु कारण माया ।
ज्ञान भये जगदीश कहैं सब ब्रह्म स्वरूप अभेद अमाया ॥

॥ घनाक्षरी ॥

थूल तन माहीं जौन भोग अभिमानी विश्व
सहित अकार सो उकार में मिलाइये ।
लिङ्ग तन माहीं जौन तेजस पुरुष युक्त
वाचक उकार सो मकार में समाइये ॥
कारण स्वमानी प्राज्ञ पुरुष मकार वाच्य
अर्धमात्र आत्मा में लीन करि ध्याइये ।
सोई आप सर्व अधिष्ठाता नाम रूप पर
जानि जगदीश भवसिन्धु तरि जाइये ॥

॥ दोहा ॥

सदा परमात्मा भाव किय, सब सुख दुखद बिसार ।
विषय लहर बिन सिन्धु इव, रहत शान्त अबिकार ॥
योगी इन्द्रिय विषय तजि, षट गुण आत्महि ध्याय ।
मम दर्शन करि सर्वदा, मोमे रहत समाय ॥
अह निशि योगी ध्यान करि, जीवन्मुक्त ह्वै जाय ।
निरभिमान भोगै विषय, तउ मोहिं माहिं समाय ॥
यह जग तीनिहुँ काल महँ, अमित शोक भय हेतु ।
ताते तजि सब कर्मफल, भजिय आत्मसत चेतु ॥

॥ चौपाई ॥

शुद्ध सच्चिदानन्द घन जोई। सर्वात्मा अहैं हम सोई॥
करब अभेद भावना जबहीं। होइहि ब्रह्म जीव यक तबहीं॥
जिमि जल सकल निदन कर जाई। मिलि सब सिन्धु रूप होइ जाई॥
विविध रंग सुरभिन कर चीरा। मिलि यक दूध कहत मति धीरा॥
घट मठ फूटि मिलहिं नभ दोऊ। महदाकाश कहावत सोऊ॥
महा वायु महँ मशक प्रभंजन। मिले होत सोइ जीव निरंजन॥
जीवन्मुक्त भये पर ज्ञानी। कर्म करत जग मिथ्या जानी॥
परमात्मा जीव यक भासा। तब जग सत्य होत भ्रम नासा॥
जिमि दुइ चन्द दिशा भ्रम होई। चित भ्रम मिटे निवृत सो होई॥
तिमि परमातमा जीव युग भेदा। भ्रम के मिटे मिटत चित खेदा॥
जब लग यहि विधि बोध न लहई। सब जग प्रगट हमहि सन अहई॥
तब लग श्रद्धा भाव समेता। मम आराधन करै सचेता॥
अन्तःकरण शुद्ध करि लैहो। सदा हृदय मम दर्शन पैहो॥
तुम सन तात कहे हम जोई। वेदसार सँग्रह यह सोई॥
यहि महँ जो मम भक्ति प्रधाना। सो अघ भंजन युक्ति बखाना॥
यहि भलि भाँति विचारहि जोई। अखिल पाप सन छूटहि सोई॥
जो यह जग तुम देखत भाई। सो केवल माया भ्रमताई॥
ताते विमल बुद्धि के द्वारा। उदासीन है करहु विचारा॥
मम भावना हृदय दृढ़ गहहू। नित निरुपाधि सुखी शुचि रहहू॥

चिदानन्द घन अमृत माहीं। प्राप्त रहे तुम अबहुँ सदाहीं॥
विस्मृत कंठ रतन् की नाईं। भूलि गयो भ्रम की बरयाईं॥
सुनि मम बचन प्रतीति समेता। होहु स्वरूपानन्द सचेता॥
हौं माया गुण रहित अनूपा। शुद्ध सच्चिदानन्द स्वरूपा॥
हौं सब गुण युत मूरति माना। सर्वभाव मोहिं भजहिं सुजाना॥
जो जेहि गुण सन सेइहि मोहीं। सो तेहि रूप मिलिहि गति ओहीं॥
जो मम प्रियजन सो जग जागा। परसि आत्मपद पदुम परागा॥
दलि अज्ञान तिमिरि भ्रम शोका। भक्त पवित्र करत त्रैलोका॥
जिमि रवि निज किरनि कर पसारी। नाशत जगत तिमिर भ्रम भारी॥
जो हम वेद वाक्य के द्वारा। गीता कहे सर्व श्रुति सारा॥
सो श्रद्धायुत पढ़िहि जो कोई। गुरु प्रसाद मोहि पाइहि सोई॥

॥ दोहा ॥

राम वचन सुनि सत्य गुणि, धरें हृदय दृढ़ भाव।
लक्ष्मण ब्रम्ह स्वरूप भये, रघुपति कृपा प्रभाव॥
रामायण अध्यात्म सन, गीता भाषा कीन।
कहै सुनै जगदीश गुणि, होइ रामपद लीन॥

॥ श्रीज्ञानदिवाकरे रामगीतायां रामतत्त्ववर्णनो दशमी कला शुभम् भूयात्॥

❀ अथ ज्ञान प्रभाकर ब्रह्मगीता एकादशी कला प्रारम्भः ❀

—····xxxxx····—

॥ सोरठा ॥

क्षर अक्षर पर देव अकथ निरक्षर शांत पद ।
ताहि सुमिरि जगदीश कहत ब्रम्ह गीता सुखद ॥

॥ चौपाई ॥

एक समय विधि शक्ति समेता । गये हंस चढ़ि इन्द्र निकेता ॥
सभा सहित उठि सुरपति बन्दे । सादर आसन दीन अनन्दे ॥
जगत जननि जगदीश्वर जाने । शची सहित पूजे सनमाने ॥
पुनि कर जोरि कहेउ सुरनायक । प्रभु आगमन सर्वफल दायक ॥
जगत पितामहँ तुम जगदीशा । सुर नर मुनि सब नावहिं शीशा ॥
ब्रम्हदेव पूजा विधि मोहीं । कहिय जाहि ते सब सिधि होहीं ॥
कह विधि प्रश्न भलो तुम कीन्हा । ज्ञानिन मोहिं विशेष सुख दीन्हा ॥
प्रथम सुनहु यह बुद्धि परेखी । ब्रम्हदेव है कौन विशेखी ॥
हम हरिहर आदिक जगदीशा । ब्रम्हदेव कोउ नहिं सुर ईशा ॥
तुमहि आदि दिशिपति सुर जेते । ब्रम्हदेव कोउ हैं नहिं तेते ॥
मुनि सप्तर्षि आदि मनु जेऊ । ब्रम्हदेव कोउ हैं नहिं तेऊ ॥
नर वर्णाश्रम तिर्यक देही । ब्रम्हदेव हम कहत न तेही ॥
अग जग सृष्टि प्रगट भव माहीं । हैं तेउ ब्रम्हदेव कोउ नाहीं ॥
अकाशादि शब्दादिकरन गन । ब्रम्हदेव नहिं मन चित बुधि तन ॥

त्रिगुण अहँ जड़चेतन भाऊ। ब्रम्हदेव नहिं काल सुभाऊ॥
विधि हरिहर सुर मुनि सब कोई। ध्यावहिं ब्रम्हदेव यक सोई॥

॥ दोहा ॥

सतचित आनंद सर्व पर, शान्त शुद्ध सम जौन।
जेहि सत्ता ते सब फुरहिं, ब्रम्हदेव यक तौन॥
अलख अनादि अनंत अज, आकाशवत असंग।
निराकार साकार सोइ, जिमि जल आप तरंग॥
आपहि विधि हरिहर सहित, इन्द्रादिक दिगपाल।
आपुहि सुर नर मुनि सकल, जड़चेतन जग जाल॥
जिमि सपने बहु नाम बपु, करत विविध व्यवहार।
पै सब सृष्टि अकाशवत, तिमि वह यह संसार॥
तेहि पूजक पूजा करत, षोड़श विधि सुनिलेहु।
अज्ञ बालकन के हृदय, जेहि न रहै सन्देहु॥

॥ चौपाई ॥

सर्वात्मा रूप जो जाना। है सोइ ब्रम्हदेव कर ध्याना॥
बाहेर भीतर पूरण देखै। सोइ आवाहन तासु विशेखै॥
सर्वाधार जानिबो जोई। ब्रम्हदेव हित आसन सोई॥
स्वच्छ जानिबो अर्घ अनूपा। जानै शुद्ध आचमन रूपा॥
निर्मल जानब सोइ अस्नाना। विश्वात्मा बसन परिधाना॥
है निरगन्ध सुगन्ध सुहाई। निर्वासना सुमन सुखदाई॥

निर्गुण ज्ञानव धूप समीपा। स्वयं प्रकाश मान सोइ दीपा॥
त्रिप्त सदा नैवेद्य प्रमाना। गुनि निशौंष्य चढ़ावै पाना॥
जान अनंत प्रदच्छिण सोई। हैं अद्वैत सो अस्तुति होई॥
भीतर बाहेर पूरण जाना। इहै विसर्जन जानु सुजाना॥
इहै सदा सुधि राखै जोई। ब्रम्हदेव नित पूजत सोई॥
ध्यानहि पूजा पूजहिं ध्याना। ज्ञानिहि कछु कर्तव्य न आना॥

॥ दोहा ॥

देह बुद्धि से दास हौं, जीव बुद्धि से अंश।
आत्मबुद्धि से एक हौं, यह मम मत निरशंश॥
ब्रम्हदेव पूजा कह्यौं, षोड़श भाँति विधान।
हृदय प्रकाशक ज्ञान रवि, नाशक तम अज्ञान॥
ऊँच नीच बड़ छोट तन, जाति जीव अभिमान।
सर्वभेद भ्रममात्र तजि, ब्रम्हदेव सत जान॥

॥ कवित्त घनाच्छरी ॥

चरण पताल ब्रम्हलोक शिर श्रवण दिशि
नैन रवि सोम सर्वलोक अंग अंग है।
दीप दधि कङ्कण औ किङ्किणी है लोकालोक
रोम तरु तारागण सारी व्योम रंग है॥

वायु प्राण चेष्टा दुःख सुख तीनौ काल माहिं
नाचत अलख साखि सत्यता प्रसंग है।
ऐसी विश्व पूतली सो भ्रम से उठी है एक
सो तो जगदीश आत्म सिन्धु की तरंग है ॥

॥ सवैया ॥

जौन अनादि अनन्त अखण्डित वेद के आदि औ मध्य औ अन्ता।
पूरण चेतन मात्र प्रणव जेहिते फुर फेरि मिलैं भगवन्ता ॥
सर्व वही जल वीचि यथा अनुभव गुणि मग्न रहैं मुनि सन्ता।
सो जगदीश अद्वैत सदा सोइ देव तुही तजु भेद अहन्ता ॥

॥ दोहा ॥

सर्व अहं की सर्वत्वं, यह तुरियाऽहंकार।
शान्त शुद्ध हं त्वं रहित, तुरिया तीत विचार ॥
तेहि महँ थित ह्वै कै सदा, विचरहु जीवन्मुक्त।
अस कहि अन्तरहित भये, ब्रम्हशक्ति संयुक्त ॥
इन्द्र ब्रम्हगीता समुझि, भये सुखी निरद्वन्द।
कहै सुनै जगदीश गुणि, लहै परम आनन्द ॥

॥ श्रीज्ञानदिवाकरे ब्रह्मगीता एकादशी कला शुभम् भूयात् ॥

ॐ अथ रुद्रगीता द्वादशी कला प्रारम्भः ॐ

॥ दोहा ॥

सब क्षर यक अक्षरहि ते, भासत सत जगदीश।
क्षर अक्षर जहँ ते फुरत, नौमि निरक्षर देव॥

॥ चौपाई ॥

एक समय शिव गौरि समेता। गये कृपाल बसिष्ठ निकेता॥
मुनि उठि हरषि दंडवत कीन्हा। पूजि त्रिविधवर आसन दीन्हा॥
गौरि अरुन्धति मिलि अनुरागीं। बातैं करन परस्पर लागीं॥
जानि सु औसर मुनि बड़भागी। पूँछेउ शिवहि जगत हित लागी॥
त्रिकालेश सब कारण कारण। दीनपाल श्रम शोक निवारण॥
तव दर्शन दुर्लभ जगनायक। सुमिरन भजन सर्वफल दायक॥
पायउँ दरश धन्य मैं अहऊँ। प्रभु प्रसाद कछु पूँछन चहऊँ॥
ह्वै प्रसन्न बुधि उत्तर देहू। तजि उद्वेग हरहु सन्देहू॥
वासुदेव सत देव इत्यादी। जाहि कहहिं परमारथ बादी॥
कौन देव वह एक विशेखी। महादेव मोहिं कहहु परेखी॥
देवार्चन कर जौन विधाना। कहहु तौन मोहिं कृपा निधाना॥
सुनि मुनि प्रश्न मदन रिपु हर्षे। परमानन्द मगन मन कर्षे॥

॥ दोहा ॥

सुनि मुनि उत्तम देव के, पूजा केर विधान।
जेहि कीन्हे भवसिन्धु सन, तरिय बिना जलयान॥

॥ चौपाई ॥

कमल नयन त्रिनयन कमलासन। सहस नयन रवि चन्द्र हुतासन॥
बरुण कुबेर पवन यमकाला। गंधर्व किन्नर निशिचर व्याला॥
सुनु श्रुनि मत परमारथ माहीं। एकोउ देव यथारथ नाहीं॥
ब्राम्हण क्षत्रियादि नर जेते। राउ रंक कोउ देव न तेते॥
छिति जल अनल अनिल नभ जेऊ। विषय त्रिगुण कोउ देव न तेऊ॥
तन मन चित बुधि अहमित जोऊ। तैं मैं आदिक देव न सोऊ॥
अकारादि परिछिन्न सरूपा। वास्तव महँ न कछुक अस रूपा॥
जहँ लगि वपु सूक्षम अस्थूला। तहँ लगि कोउ न देव सुख मूला॥
जो अविछिन्न अनादि अनंता। पूर्ण अखंड स्वयं भगवंता॥
एक अकृत्रिम अकथ अदेखा। है सोइ केवल देव विशेखा॥
शुद्ध सच्चिदानंद घन जोई। देव स्वरूप सिन्धु यक सोई॥
सर्वभूत बुल्ला जेहि माहीं। आपु आपु महँ फुरहिं समाहीं॥

॥ दोहा ॥

सोऽपि अरूप अनाम पर, कहिय शब्द से देव।
तेहि पूजन अर्चन सही, अपर खेल गुनि लेव॥

॥ चौपाई ॥

[illegible]हि से यह सब भयउ अकारा। जो सम शान्त आतम अविकारा॥
सो सर्वात्महि जान न दूजा। है सोइ परमदेव की पूजा॥
जो वह आतम तत्त्व न जाना। तिन हित पूजा मूर्ति बखाना॥

जिमि अंजलि न सकै चलि जोई। तेहि यक कोश चलब भल सोई ॥
तिमि जेहि अगम अकृत्रिम देवा। तेहि भल मूरति पूजन सेवा ॥
जो जेहि केर भावना गहई। सो तेहि रीति भोग फल लहई ॥
कर परिछिन्न उपासन जोई। फल परिछिन्न प्राप्त तेहि होई ॥
भजै जो प्रभु अविछिन्न अनूपा। लहै सो फल परमातम रूपा ॥
छाँड़ि निराकृत साकृत भजई। गहै सो गुंजा मणि कहँ तजई ॥
किमि सो देव तेहि पूजन काहा। केहि विधि होति सुनहु ऋषि नाहा॥
तीनि फूल शुचि सुन्दर जोई। तिन्ह सन तासु अर्चना होई ॥
बोध साम्य सम तीनिहु फूला। मिलहिं जो संत होहिं अनुकूला ॥
बोध कहावत सम्यक ज्ञाना। आतम तत्त्व यथारथ जाना ॥
सोइ सब महँ परिपूरण देखै। साम्य नाम तेहि द्वैत न लेखै ॥
सम चित निवृत करै अभ्यासा। आत्म तत्त्व सन भिन्न न भासा ॥
शिव चिन्मात्र शुद्ध जो देवा। इन तीनिहुँ ते है तेहि सेवा ॥

॥ दोहा ॥

जे आत्मा चिन्मात्र तजि, पूजत जड़हिं अयान।
ते आहुति कृत भस्म महँ, बोवत ऊपर धान ॥
ज्ञान ज्ञेय जे पुरुष हैं, करहिं चिदात्मा ध्यान।
तै प्रतिमा की अर्चना, बाल केलि इव मान ॥

॥ चौपाई ॥

एक देव आतम भगवाना। सोइ शिव कारण रूप महाना ॥
तासु सदा ज्ञानहि ते पूजा। तेहि तजि देव न अर्चन दूजा ॥

चिदाकाश यक आत्महि जानू । पूरण आदि मध्य अवसानू ॥
पूज्य सु पूजक पूजा जोई । त्रिपुटी ते न यजन तेहि होई ॥
कह मुनि चिदाकाश जग अहई । चेतन काहिं जीव सब कहई ॥
कह शिव जो चेतन आकाशा । है प्रसिद्ध सब प्रकृति निराशा ॥
महा कल्प रह शेष जो कोई । होत आपु किंचन वपु सोई ॥
वहि किंचन सन सब भव होई । तेहि बिन कारण कार्य न कोई ॥
आपुहि भास स्वप्न जग जैसे । जाग्रत सृष्टि आत्महि तैसे ॥
आपुहि फुरन महत अहंकारा । आपुहि त्रिगुण भाव बिस्तारा ॥
आपु प्रकृति कर जगत प्रबंधा । शब्द स्पर्श रूप रस गंधा ॥
आपुहि अम्बर अनिल अपारा । आपु अनल जल अवनि अकारा ॥
आपुहि शैल नदी तरु नाना । आपुहि अग जग जीव जहाना ॥
आपुहि पिता आपुही माता । आपुहि पुत्र आपुही भ्राता ॥
आपुहि राजा आपुहि रानी । आपुहि प्रजा आपु रजधानी ॥
आपुहि सेवक आपुहि स्वामी । आपु महाजन आपु असामी ॥
आपुहि पुरुष आपुही नारी । आपुहि दाता आपु भिखारी ॥
आपुहि वैद्य आपुही रोगी । आपु विरक्त आपुही भोगी ॥
आपुहि गृही आपुहि त्यागी । आपुहि बान प्रस्थ वैरागी ॥
आपुहि जागै आपुहि सोवै । आपुहि गावै आपुहि रोवै ॥
आपुहि यज्ञ आपु यजमाना । आपु पुरोहित आपु विताना ॥
आपुहि हवन अग्नि मख साजा । आपुहि कारण आपुहि काजा ॥
आपुहि प्रीतम आपुहि प्रेमी । आपुहि प्रेम आपुही नेमी ॥

आपुहि षटरस सर्व आहारा। जेंवत आपु पचावन हारा॥
पेखन आपु आपु कर्तारा। आपुहि देखत आपुहि न्यारा॥
आपुहि पूज्य आपुहि पूजा। आपुहि पूजक और न दूजा॥
आपुहि गुरु आपुही चेला। आपुहि बहु वपु आपु अकेला॥
आपु ब्रम्ह अरु प्रकृति अनीशा। आपुहि जगत आपु जगदीशा॥
आपुहि क्षर जड़रूप अनेका। आपुहि अक्षर चेतन एका॥
आपु निरक्षर केवल अहई। आपुहि आपु अपर को कहई॥
जल कण कञ्चन भूषण जैसे। एक अनेक एक सोइ तैसे॥
तजि चिन्मात्र अपर जो भासा। सो जानहु भ्रम स्वप्न तमासा॥
ज्यों सपने अँग काटै कोई। कटत न नींद दोष दुख होई॥
त्यों भ्रम दोष द्वैत भव भासा। जगे ज्ञान महँ सब दुख नासा॥

॥ छन्द ॥

आकाश परमाकाश ब्रम्हाकाश तीनौं एक हैं।
जिमि स्वप्न में सङ्कल्प माया जनित सृष्टि अनेक हैं॥
पै सर्वचिद आकाश तैसे जगत जाग्रत जानिये।
अद्वैत से नहिं भिन्न कछु जो द्वैत सो भ्रम मानिये॥

॥ दोहा ॥

यहि प्रकार सब विश्व यह, केवल आत्म स्वरूप।
सो सतचित आनन्द घन, अमल अखण्ड अनूप॥
निश्चयात्मिका बुद्धि जेहि, तुम सारिखे सुजान।
तिन्ह हित यह पूजन कही, का जानहिं अज्ञान॥

॥ चौपाई ॥

जे जन बालक सरिस अयाना। चेतन आतम देव न जाना॥
तिन हित कल्पित मूरति केरी। अर्चन युक्ति बनी बहुतेरी॥
निज संकल्पित देव बनावहिं। धूप दीप नैवेद्य चढ़ावहिं॥
यक भावनामात्र श्रुति कहहीं। सो संकल्प रचित फल लहहीं॥
मो मत और देव नहिं कोई। आतमदेव यक पूरण सोई॥
सोइ शिव तत्त्व सर्वपद न्यारा। शान्त शुद्ध सम सर्व प्रकारा॥
सब संकल्प रहित अविकारा। सब संकल्पन्ह कर आधारा॥
सर्वभूत विषयन्ह ते हीना। देशकाल परिछेद विहीना॥
सर्वभाव भीतर थित जोई। जेहि महँ भाव फुरहिं सब कोई॥
सबहि सत्यप्रद सब सत्ताहर। सत्य असत्य मध्य सबसे पर॥
परम स्वतः सत्ता स्वभाव से। सबहि प्राप्त नित सर्वभव से॥
महा चित्त कहवावत जोई। परमात्मा देव यक सोई॥
चेतन सब महँ व्यापक कैसे। सकल वृक्ष विच रस जल जैसे॥
जो चिद्रूप अरुन्धति केरो। जो चिद्रूप तत्त्व है तेरो॥
जो चिद्रूप शिवा कर हेरो। सोइ चिद्रूप आत्मा मेरो॥
सोइ चिद्रूप जगत कर अहई। सोइ सतदेव एक रस रहई॥

॥ दोहा ॥

चिन्मात्रहि सब विश्व कर, सारभूत गुणि लेव।
सोइ यक पूजन योग्य नित, निराकार सत देव॥

॥ चौपाई ॥

सो न दूरि कहुँ दुर्लभ नाहीं। सर्वात्मा इस्थित सब माहीं ॥
सोइ सब क्रिया करत कर्तारा। भोजन भरण आदि व्योहारा ॥
सोवत जागत बैठत डोलत। रोवत हँसत मौन कहुँ बोलत ॥
आपुहि खैंचत छाँड़त स्वासा। देखत सुनत स्वतन्त्र निरासा ॥
पुर्यष्टिक महँ चिद आकाशा। प्रतिबिम्बित ह्वै करत प्रकाशा ॥
जिमि गिरि पर चर अचर अनेका। बिचरहिं थिरहिं एक ते एका ॥
सो गिरिवर सब कर आधारा। शान्त एकरस सम अविकारा ॥
तिमि मन सह इन्द्रिय व्यवहारा। तेहि आश्रय सन होत अपारा ॥
सो वह आप अनाम अरूपा। अकथ अनादि अनंत अनूपा ॥
कहन सुनन समुझावन हेता। नाम धरे मुनि अर्थ समेता ॥
एक देव चिन्मय सब व्यापी। आत्म ब्रम्ह संज्ञा बहु थापी ॥
जो कछु जगत स बिस्तर भासा। सो सब जानहु तासु प्रकासा ॥
व्यापक सर्व रहित सोइ कैसे। घट मट भुवन एक नभ जैसे ॥
नित्य शुद्ध अद्वैत सरूपा। जल तरंग इव सोइ बहुरूपा ॥
कहुँ नभ पवन अनल जल धरनी। कहुँ गिरि बिटप कतहुँ सरि तरनी ॥
कहुँ तम कहुँ प्रकाश दरशाया। कहुँ दिशि विदिशि धूप कहुँ छाया ॥
देव दैत्य नर अग जग जेते। एकहि माहिं फुरहिं सब तेते ॥
सोइ चेतन्य चतुर्भुज होई। रक्षत सुजन दुष्ट खल खोई ॥
सोइ चेतन्य त्रिलोचन भेशा। गौरि मुखाम्बुज रसिक महेशा ॥
सोइ चेतन्य होत नारायन। शेष रूप कर्ता जल शायन ॥

॥ दोहा ॥

जाके नाभी कमल सन, भो विधि सरसी रूप ।
जाते त्रिभुवन वेद सब, भये कमल अनुरूप ॥
सोइ चेतन्य त्रिलोक पति, इंद्र आदि दिगपाल ।
सोइ चेतन सुर नर असुर, भो सब अग जग जाल ॥

॥ चौपाई ॥

सोइ चेतन चौबिस अवतारा । ह्वै जग सृजत धर्म व्योहारा ॥
चेतन ब्रम्ह चेतन्यहि माया । चेतन जीव चेतन्य हि काया ॥
चेतन ज्ञेय ज्ञान अरु ज्ञानी । चेतन ध्येय ध्यान अरु ध्यानी ॥
जिमि एकहि रस होत अनेका । कंचन भूषण बहुत सो एका ॥
तिमि सब रूप एक ही केरे । यक तरु दल फल फूल घनेरे ॥
सोइ चेतन्य चरित सब करई । उपजन मरन रूप सोइ धरई ॥
जिमि यक सिन्धु लहर बहु होई । उपजहिं मिटहिं अहै जल सोई ॥
जन्म मरन तिमि चेतन माहीं । पर वह आत्महि रूप सदाहीं ॥
जग प्रतिबिम्ब मुकुर सोइ अहई । निज कृत वस्तु आपुही गहई ॥
जगत प्रकाश्य प्रकाशक सोई । तम प्रकाश तेहिते सिधि होई ॥
चेतनरूपी पवन प्रचण्डा । ताते उड़हिं रेनु ब्रम्हण्डा ॥
चेतन ही ते सब जग होई । दै सत सिद्ध करत सब सोई ॥
चेतन ते जड़ की सिधिताई । तेहिते तेहि अभाव ह्वै जाई ॥
ज़िमि प्रकाश ते तम सिधि होई । जात प्रकाशहि से सोइ खोइ ॥

तिमि चेतन ते है तन साँचा। चेतन ही ते होत असाँचा ॥
विश्व पदारथ अस नहिं कोई। चेतन बिना सिद्धि जो होई ॥

॥ दोहा ॥

प्रभु जब चेतन देव यक, आपुहि व्यापक रूप।
तब चेतन अब जड़ भयो, किमि सब करत निरूप ॥

॥ चौपाई ॥

सुनु मुनि यहि तन मन्दिर माहीं। दुइ विधि चेतनरूप सदाहीं ॥
निर्विकल्प आत्मा यक रूपा। सदा एक रस शान्त अनूपा ॥
एक चेतन्योन्मुख बपु अहई। सो वह मिला दृश्य सन रहई ॥
निज संकल्प फुरन से सोई। जीव कहाइ अन्य इव होई ॥
वास्तव महँ न भयो कछु कैसे। स्वप्न सृष्टि पुनि जाग्रत जैसे ॥
जिमि पावक थिर चंचल ज्वाला। तिमि परमातम जीव हेवाला ॥
निज संकल्प सृष्टि बिस्तारी। भ्रम करि जीव भयो संसारी ॥
यथा सिंह मृग गण संग आई। चारा चरत स्वभाव भुलाई ॥
सहज रूप निज चेतै जबहीं। गज शिर चढ़ै मृगन तजि तबहीं ॥
तथा जीव संकल्प अधीना। इन्द्रिन्ह संग भयो जनु दीना ॥
जिमि शिशु लखि अपनी परछाहीं। गुनि बैताल डरत मन माहीं ॥
तिमि अपनेहि कल्पित भव आसा। परि करि कर्म लहत दुख त्रासा ॥
कहुँ तन तजत गहत कहुँ अहई। गिरि स्वरूप सन भटकत रहई ॥
यक चेतन चित की सतताई। है स्पंद बहुभाव देखाई ॥

कहुँ हरि रूप छीर निधि बासी । कहुँ विधि ह्वै विधि लोक नेवासी ॥
कहुँ हर पँच बदन कैलासी । कहुँ सुरपति ह्वै स्वर्ग बिलासी ॥
कहुँ रबि शशि दिन रैनि प्रकाशी । कहुँ नक्षत्र उडुगण द्युति राशी ॥
छिति जल अनल अनिल नभ रूपा । होत प्रकृति गुण तेहि अनुरूपा ॥
बड़ विराट लघु सूक्ष्म प्रयंता । रूप नाम गुण होत अनंता ॥
ऊर्ध मध्य अध भटकत रहई । कर्म शुभाशुभ कर फल लहई ॥
जस जस करत भावना सोई । तस तस रूप शीघ्र वह होई ॥
जिमि सपने होइ आपुहि आना । भोग सत्य इव दुख सुख नाना ॥

॥ दोहा ॥

पर स्वरूप से सत्यता, होति भिन्न कहुँ नाहिं ।
जिमि नद फेन तरंग बहु, सब जलही जल आहिं ॥

॥ चौपाई ॥

वास्तव महँ जो करिय विचारा । चेतन चित्त न चेतन हारा ॥
द्रष्टा दृश्य न दर्शन कोई । जिमि शिल माहिं तेल नहिं होई ॥
कारण कर्म न कर्ता धर्ता । तत्त्व न देह न भर्ता हर्ता ॥
सत्य असत्य न चेंत अचेता । शून्य अशून्य न एक द्वैता ॥
केवल आत्म अपर कछु नाहीं । जिमि न तिमिर रबि मंडल माहीं ॥
जगत असत गुणि करिय अभाऊ । आत्महि सत गुणि कीजिय भाऊ ॥
तो मिटि जाय भेद भ्रम सोई । आपु आपुसन प्राप्त सो होई ॥
निर्विकल्प अद्वैपद जोई । बिन अभ्यास मिलै किमि सोई ॥

जिमि ताँबे युत कनक मलीना । तिमि अनात्म मिलि जीव भो दीना ॥
शोधे स्वर्ण शुद्ध फिरि होई । किये विचार जीव शुचि सोई ॥
श्वास लगे जिमि दर्पण माहीं । बदन यथारथ भासत नाहीं ॥
मिटै मलिनता मुख लखि परई । तिमि धरि धीर विचार जो करई ॥
चित प्रमाद फुरि भो ऽहंकारा । तेहि भ्रम ते भासत संसारा ॥
अहंकार ते भ्रम अधिकाई । उलटी मति स्वरूप बिसराई ॥
तन इन्द्रिन कहँ निज बपु जाना । तजि अज अमर जन्म मृत माना ॥
तजै अनातम कर ऽहंकारा । भजै आतमपद जो अविकारा ॥

॥ सोरठा ॥

आत्म शुद्ध चिदरूप जेहि सत से इन्द्री सकल ।
ऽहै चेतन्य स्वरूप ग्रहण करहिं निज निज विषय ॥

॥ दोहा ॥

जिमि रवि के उजियारते, जग व्योहार करंत ।
तिमि प्रभु सत्ता ते सकल, इन्द्री विषय गहंत ॥

॥ चौपाई ॥

प्राण वायु हित जो दृग माहीं । सुख श्यामता प्रकाश सदाहीं ॥
अपने माहिं रूप गह सोई । बाह्य विषय संयोग जो होई ॥
सो सरूप अनुभव जेहि होई । परम सचेतन सत्ता सोई ॥
त्वच स्पर्श मिलि अनुभव जेहीं । जान सचेतन सत्ता तेहीं ॥

घ्राण गंध मिलि अनुभव लहई। परम सचेतन सत्ता अहई॥
शब्द श्रवण रस जीह संयोगा। जेहि अनुभव सब इन्द्रिय भोगा॥
साक्षी रूप आत्मा जोई। परम सचेतन सत्ता सोई॥
एक एक अनुभव कहेउँ बखानी। रस रस तत्त्व विचारहि ज्ञानी॥

॥ दोहा ॥

पंच विषय इन्द्रियन मिलि, इन्ह कर जानन हार।
सो साक्षी परमात्मा, सत चेतन अविकार॥
अन्तर्मुख सम शांत नित, देव अनल अविछीन।
फुरत बहिर्मुख दृश्य से, मिल्यो चित्त मलीन॥
सो चित जबहिं स्वरूप महँ, मिलै शुद्ध तब होइ।
ज्ञान भये सब एक जिमि, तोय तरंग न दोइ॥

॥ कवित्त घनाक्षरी ॥

आदि चित्त कला जो फुरी सो चढ़ी जीव रथ
जीव अहंकार पर अहंकार बुद्धि पर।
बुद्धि चढ़ी मन पर मन चढ़यो प्राण पर
प्राण चढ़े इन्द्री पर इन्द्री देह बुद्धि पर॥
देह चढ़ी वस्तु पर कर्म जो करत नित्य
विश्वरूपी पिञ्जर में भ्रमै कार्य सिद्धि पर।
ऐसे चक्रमाहीं जीव भटकै प्रमाद करि
साक्षी जगदीश निर्विकल्प सिद्धि निद्धि पर॥

॥ दोहा ॥

जिमि रवि कर जल स्वप्न पुर, फुर लागत पै नाहिं।
तिमि जग भासत है न कछु, समुझि लेहु मन माहिं॥

॥ कवित्त ॥

प्राण के फुरेते मन फुरत थिरे से थिर
जैसे बिन रोशनी न भासै वस्तु कोई है।
वायु के थिराने जिमि जिमी से उड़ै न धूरि
प्राण के थिराने मन आपै शान्त होई है॥
हृदै में जो नाड़ी तामें प्राण फुरै आपही ते
ताही ते मनन होत जानौ मन सोई है।
संवित जो स्वच्छ जगदीश सो समस्त भासै
संवेदन प्राण ही में भासै हम जोई है॥
व्यापी आत्म सत्ता सर्वत्र है परन्तु जहाँ
प्राण कला होती तहाँ भासति विशेष।
सूर्य को प्रकाश जिमि होत सब ठौर पर
ऐन्दा अम्बु माहिं प्रतिबिम्ब परै देष है॥
आत्महीं की सत्ता पुर्यष्टिका चेतन्य करै
इन्द्री ह्वै चेतन्य करै चेष्टा सरेष है।
जैसे भानु रोशनी से विश्व को व्योहार होत
तैसे जगदीश आत्म साखी रूप शेष है॥

॥ दोहा ॥

प्रभु चेतन परमात्मा, वह अनन्त अरु एक।
तेहि कहते यह द्वैत भो, कहिय विचार विवेक॥
सुनु मुनि चेतन ब्रम्ह वह, सर्वशक्ति सब पार।
एकहि अद्वैत होत तब, केवल पद अविकार॥
एक भाव से द्वैत अरु, द्वैत भाव से एक।
दोउ कल्पनामात्र यह, समुझहु विमल विवेक॥
चित्त फुरे ते एक दुइ, शान्त भये कछु नाहिं।
यक अनेक जल बीचि जिमि, आपहि अपने माहिं॥

॥ चौपाई ॥

कारण से बहु कारज होई। सो यक रूप अहै नहिं दोई॥
यथा बीज से फल पर्यन्ता। एकहि तरु बिस्तार अनन्ता॥
बाढ़ब घटब कल्पना होई। तरु युत बीज एक ही सोई॥
बीज फुरे तरु भासत जैसे। चेतन चित्त फुरे जग तैसे॥
जल द्रवता करि होत तरंगा। आत्म फुरे भव भास अभंगा॥
एकहि चेतन देव अनूपा। फुरत अहं त्वं व्है बहु रूपा॥
जब सब चेतन पूरण भासा। तब तब कहाँ प्रश्न अवकासा॥
चेतन एक द्वैत पद रहिता। है सोइ एक द्वैत गुण सहिता॥

॥ सर्व सर्वातम ॥

सर्व रहित सर्वातम जाना। जीवन्मुक्त सो वेद बखाना॥
मैं बनि कै मन बन्धन परई। करि संकल्प विविध तन धरई॥
शुद्ध स्वरूप जान जब सोई। तब अकाशवत व्यापक होई॥
होइ जबहिं मन महँ मन छीना। अरु मन मेंह इंद्रिय गण लीना॥
तब यक द्वैत भेद मिटि जाई। शेष आतम चेतन दरशाई॥
मनहिं थिरे जग भास न कैसे। बीज भुने तरु उपज न जैसे॥
चेतन सत्ता चित लय करई। तब सम शान्त रूप लखि परई॥
लहि सुषुप्ति इव निर्भय बोधा। होत शान्त अद्वै अविरोधा॥

॥ दोहा ॥

मन उपशम कर प्रथम पद, यह तोहिं कह्यों बुझाय।
अब द्वितीय पद की दशा, सुनु मुनीश मन लाय॥
चित सत्ता मन मनन से, मुक्ति होति जब तात।
होत ताहि ते मुक्त जब, तब शशि इव व्है जात॥

॥ चौपाई ॥

प्रिय प्रकाशवत् शीतल रूपा। नभवत् शुचि विस्तरित अनूपा॥
अपना आप भास सब ठाईं। घन सुषुप्ति वपु शिल की नाईं॥
जिमि नभ शब्द लीन व्है जाई। तिमि चित चेतन मँह मिलि जाई॥
जब चित होत आत्मारामी। ब्रह्म रूप तब अन्तर यामी॥
आतम सत्ता अकथ अनूपा। नहिं जड़ नहिं चैतन्य स्वरूपा॥

कलना कला कलंक विहीना। अरु अचैत चिन्मय अविच्छीना॥
सब सत्ता कर धारन वारी। पाइ स्वरूप होत अविकारी॥
सर्व रहित साक्षी इव होई। यह द्वितीय पद पावत सोई॥
इहै तुरीया पद मुनि ज्ञानी। अग तृतीय पद कहौं बखानी॥
यदपि गिरा की गम तहँ नाहीं। तदपि कहौं जहँ लगि कहि जाहीं॥

॥ दोहा ॥

जब आत्मा महँ वृत्ति कर, होत अतिहि परिनाम।
तब ब्रह्मात्मा आदि तहँ, होत निवृति सब नाम॥

॥ चौपाई ॥

जहँ न एक दुइ हम तुम हेता। सत्या सत्य न चेत अचेता॥
जहँ सब कारण फुरन समाहीं। भाव अभाव फुरत कछु नाहीं॥
परम शान्त पद तुरिया तीता। सो तेहि प्राप्त होत सु पुनीता॥
सब कर अन्त सर्व आधारा। सर्वातीत सर्व पद न्यारा॥
वेद शास्त्र जेहि जान न भेवा। सो कैवल्य सनातन देवा॥
यक दुइ सत्य असत है नाहीं। वह यह आदि कहेउँ तुम पाहीं॥
इनके आदि अन्त मधि न्यारा। देव यथास्थित अगम अपारा॥
कछु न भयो नहिं है नहिं होई। केवल अनिर्वाच्य पद सोई॥
समुझि होहु इस्थित तेहि माहीं। तेहि भव माहिं भेद भ्रम नाहीं॥
परमात्मा तत्त्व सुनि येहा। गुणि मुनिवर भये मौन विदेहा॥
शिव वशिष्ठ की वृत्ति अनूपा। भई आत्म महँ इस्थित रूपा॥

भये चुप चाप चित्र इव दोऊ। लखहिं न सुनहिं परस्पर कोऊ॥
यक मुहूर्त महँ ईश्वर जागे। मुनिहिं विलोकि जगावन लागे॥
जागहु मुनि अब लोचन खोलौ। कानन सुनौ वदन ते बोलौ॥
देखन योग्य सो तौ तुम देखा। जानेहु जानन योग्य बिशेखा॥
पावन योग वस्तु तुम पाये। अब केहि हेतु समाधि लगाये॥

॥ दोहा ॥

अज्ञ बालकन्ह बोधहित, जो बूझेहु मुनिराज।
सो हम कहे विचारि अब, मौन रहे का काज॥

॥ चौपाई ॥

जब न जगेउ मुनि तबहिं महेशा। तेहि उर अन्तर कीन्ह प्रवेशा॥
चित्त वृत्ति सन ताहि जगावा।शिव सन्मुख लखि ऋषि सुख पावा॥
जानेउ इहै रहित संदेहा। है सोइ आत्म रूप शिव एहा॥
जब शिव दीख मुनिहिं दृग खोले। तब दृढ़ बोध हेतु फिरि बोले॥
मुनि यह देह क्रिया कर हेतू। अहै प्राण स्पन्द सचेतू॥
उदासीन आतम तेहि माहीं। सोन करत कछु भागत नाहीं॥
जीवहि स्वरूप प्रमाद जो होई। तन अभिमान करत तव सोई॥
मैं मम देह करौं महिं कर्मा। तेहि फल भोग फिरत जग भर्मा॥
भ्रमवश लखत लोक पर लोका। लहत वासना वश सुख शोका॥
तजत जो पंचभूत कृत देहीं। गहत पंच तन्मात्रा केहीं॥
तब तेहि होति वासना जहवाँ। पल महँ प्राप्त होत सो तहवाँ॥

प्रथम अंत वाहक वपु लहई । पुनि मिलि दृश्य थूल तनु गहई ॥
अंत वाहकहि देत बिसारी । ह्वै जड़ थूल देह अहंकारी ॥
मरत समय ह्वै मोह अधीरा । निज संग देखत थूल शरीरा ॥
ज्यों सपने महँ सूक्ष्म देहीं । थूल रूप निज भासत तेहीं ॥
पुनि तेहि करि अहंकार प्रतीती । क्रिया करत भ्रम मति बिपरीती ॥
पुर्यष्टिका कढ़त तन ते जब । प्रथम गगन महँ जाइ मिलत तब ॥
तेहि तन काहिं मृतक सब कहहीं । जीवहि अमर न जानत अहहीं ॥
पुर्यष्टिका फुरत फिरि सोई । पुनि पुनि जन्म मरण इमि होई ॥
जेहि वासना शुद्ध नभ माहीं । मिलि पुर्यष्टिक फुरत सो नाहीं ॥

॥ दोहा ॥

जब यह आत्म विचार दृढ़, उपज करै अभ्यास ।
मिटै देह अभिमान तब, लहै स्वरूप निवास ॥

॥ चौपाई ॥

आत्म स्वरूप सच्चिदानंदा । जेहि महँ उड़हिं विश्व अणु वृंदा ॥
जेहि सत्ता सन सत संसारा । अणु अणु महँ बहु सृष्टि अपारा ॥
ईशदेव नर तिर्यक जेते । फुरहिं अनन्त ताहि सन तेते ॥
सत्य सत्य सब कारण कारण । परमदेव सोइ तारण तारण ॥
तीनि काल अस वस्तु न कोई । सत्यदेव महँ असत न होई ॥
ऐसहु वस्तु न त्रिभुवन माहीं । सत्यदेव सन सत्य जो नाहीं ॥
सब सत्ता मनिक सोइ आकर । सब सुख सुधा सु बिन्दु सुधाकर ॥

सर्व अकार लहर कर सागर । सब बुधि किरण दिनेश उजागर ॥
सर्व विभूति रतन रत्नाकर । निर्गुण सहज सर्व गुण आगर ॥
जेहि सत्ता सन सब जग नाचा । देखनहार आप यक साचाँ ॥
एक सोई परमातम देवा । करिय ताहि की पूजन सेवा ॥
चिन्मय अनुभव आतम जोई । सब के भीतर बाहेर सोई ॥
सर्वात्मा शान्त सम रूपा । तेहि पूजा दुई भाँति निरूपा ॥
इष्टदेव कर पूजन ध्याना । ध्यानहि पूजन भेद न आना ॥
जहँ जहँ सुनौ गुनौ कहि देखौ । तहँ तहँ रूप आतमहिं लेखौ ॥
सर्व प्रकाशक जो चिद्रूपा । भीतर बाहेर एक अनूपा ॥
सतचित अनुभव भीतर जोई । अहंरूप करिहै सिध सोई ॥
सर्व सार अरु सर्व अधारा । तेहि विराट वपु सुनहु अपारा ॥
बाहेर ऊर्ध अनन्त असीवाँ । परमाकाश तासु की ग्रीवाँ ॥
है तेहि चरण अनन्त पताला । दिशि अनन्त तेहि भुजा विशाला ॥
सर्व प्रकाश अस्त्र तेहि मानौ । हृदय कोश महँ इस्थित जानौ ॥
करत प्रकाश सघन ब्रह्मण्डा । पर नभ पार अपार अखण्डा ॥
विधि हरिहर इन्द्रादि देव गन । रोमावलि छवि देहिं तासु सन ॥
द्वारपाल तेहि काल कराला । सत्ता रूप निवृत जग जाला ॥

॥ दोहा ॥

गिरि आदिक ब्रह्माण्ड जग, तेहि तन कौनेहु कौन ।
है इस्थित जानै 'न कोऊ, यथा गगन कहँ पौन ॥

एकहि देव अनंत सोइ, सत्ता मात्रा स्वरूप ।
तेहि प्रभु कहँ चिन्तन करै, सो न परै भ्रमरूप ॥

॥ चौपाई ॥

पुनि मुनि महादेव वह कैसा । सो सुनु ध्यान कहौं अब जैसा ॥
सहस चरण शिर सहस विलोचन । सहस भुजादिक भवे भय मोचन ॥
श्रवण त्वचा चष रसना घ्राना । सब इन्द्री सब ओर सुजाना ॥
अरु सब ओर भावना मीता । सर्व ओर मन मनन अतीता ॥
सर्व ओर सोइ है शिव रूपा । सदा सर्व कर्तार अनूपा ॥
सब संकल्प अर्थ फल दायक । सब प्रकार समरथ सब लायक ॥
सर्व साधना कर सिधि कर्ता । सर्वरूप सब संशय हर्ता ॥
सर्वभूत भीतर थिर जोई । महादेव सर्वात्मक सोई ॥
करहु सदा तेहि चिंतन ध्याना । नहिं षोडश उपचार विधाना ॥
तदाकार ह्वै रहिय हमेशा । यह तेहि पूजन श्रेष्ठ सु वेशा ॥
बाहेर अर्च कहेउँ बखानी । भीतर पूजा सुनु अब ज्ञानी ॥
संवित मात्र देव है जोई । अनुभव ही ते प्रकाशत सोई ॥
सामग्री तेहि चाहिय न कोई । बिन प्रयास नित पूजन होई ॥
सजातीय तेहि करिय प्रतीता । सोई तेहि पूजन परम पुनीता ॥
शुद्ध चिदातम अनुभव रूपा । पूजिय तेहि सब भाँति अनूपा ॥
देवहिं सुनत छुअत लखि बोलत । गहत गन्ध रस बैठत डोलत ॥

॥ दोहा ॥

इन्हहिं आदि जेती क्रिया, करत सदा सब देश।
सो प्रतच्च चैतन्य महँ, अर्पण करौ हमेश॥
इहै ध्यान वहि देवकर, है षोडश उपचार।
यही परम जप योग है, सब साधन कर सार॥
परम देव पूजा परम, पाय परमपद पाव।
तेहि पूजत सब देवगण, ऐसो देव प्रभाव॥

॥ चौपाई ॥

अब सुनु मुनि अभि अन्तर पूजा। अहंकार जहँ फुरै न दूजा॥
प्राण अपान यान आरुढ़ा। जो चिन्मात्र हृदयबिच गूढ़ा॥
तासु प्रकाश ज्ञान है जोई। है यक कर्ता भोक्ता सोई॥
निराकार फुरि सोई साकारा। जिमि यक बीज विटप विस्तारा॥
जो साकार परै लखि रूपा। सो विराट आतमा अनूपा॥
ताते सते स्वरूप पहिचानौ। रूप बिराट आप को मानौ॥
हाथ पाँव सहे नख शिख येहा। सब ब्रह्माण्ड अहै मम देहा॥
महीं प्रकाश रूप यक देवा। आतम अनन्त अखण्ड अभेवा॥
इच्छा नीति आदि मम शक्ति। सकल करहिं मम सेवन भक्ति॥
मन दर वान निवेदन कारी। अरु चिंतवन मेरी प्रतिहारी॥
बिबिध ज्ञान अँग भूषण नाना। चित्त बिचित्र बसन परिधाना॥
सकल कर्म इन्द्री मम द्वारा। ज्ञानेन्द्रिय गण सचिव विचारा॥

॥ दोहा ॥

अस मय एक अनन्त सम, रह्यों आप महँ व्याप ।
जो पूजै यहि भाव ते, मिलै आत्म महँ आप ॥
तव समता मुदिता क्षमा, शीतलता दिक भाव ।
लहि अद्वै निर्भय रहै, बर्तै बाल सुभाव ॥
फुरत बहि र्मुख वृत्ति सोइ, सर्व अहं यह होइ ।
तेहि तजि अन्तर्मुख रहै, शान्त आत्म पद सोइ ॥
पुनि पुनि मुनिहि प्रबोधि इमि, शङ्कर कृपा निधान ।
दै शिक्षा आशिष हरषि, किय गौरीश पयान ॥
कथित रुद्र गीता अगम, अमित समुद्र समान ।
कछुक कह्यों मैं क्षुद्र मति, लहि स्वपात्र अनुमान ॥
शिव वसिष्ठ सम्बाद यह, पढ़ि सुनि गुनै जो कोइ ।
देव दया जगदीश तेहि, प्राप्त परम पद होइ ॥

॥ श्रीज्ञानदिवाकरे योगवासिष्ठ मते रुद्रगीता द्वादशी कला शुभम् भूयात् ॥

॥ ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्ण मुदच्यये ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवाव शिष्यते ॥
॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

॥ ॐ वह पूर्ण है यह पूर्ण है पूर्ण से पूर्ण निकलता है ।
पूर्ण का पूर्ण लेकर पूर्ण ही शेष रहता है ॥
॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

॥ इदम् प्रति हस्तलिखित दण्डी स्वामी जगदीशानन्द सरस्वती ॥

॥ ॐ आनन्दम् ॥

कोई तो कहत ब्रह्म तीरथ में वास करै
कोई तो कहत यज्ञ मण्डल मुकाम है।
कोई तो कहत तपव्रतमहँ रहे वह
कोई तो कहतवसें जहाँ हरि नाम है॥

कोई तो कहत रहे हृदय कमल विच
कोई तो कहत वस त्रिकुटी में धाम हैं।
अखिल जगत विच जड़वो चेतन माहीं
राम नहीं देखा जहाँ नाहीं ब्रह्म ठाम हैं॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

कृष्ण प्रभू के नाम पै मैं त्यागा धन अरु धाम।
आवेंगे प्रभु जो निश्चय अन्त समय में काम॥

॥ कवित्त ॥

चक्र के धरनहारे गरुड़ के असवारे
नंद के दुलारे मेरो संकट निवारो जू।
यमलार्जुनतारे गजग्राह को उबारे
काली के नथनेहारे मेरे प्राण के अधारे जू॥

नख पर गिरिधारे गोपी ग्वाल को उबारे
इन्द्रहू के गर्वहारे विरद विचारे जू।
द्रुपतसुता की वेरने कहूँनलागी देर
अब कहा अबेर सूर सेवक तिहारो जू॥

अज्ञानान्धस्यलोकस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितंयेन तस्मैश्रीगुरुवे नमः॥

प्रल्हाद नारद पराशर पुण्डरीक।
वासाम्बरीप शुक शौनक भीष्मकाव्याः॥
रुक्माङ्गदार्जुन वसिष्ठ विभीषणा द्या।
एतानहं परम भागवतान्नमामि॥

अभिमन्यु—

गोविन्द गोविन्द हरे मुरारे।
गोविन्द गोविन्द मुकुन्द कृष्ण॥
गोविन्द गोविन्द रथाङ्ग पाणे।
गोविन्द गोविन्द नमामि नित्यम॥

धृष्टद्युम्न—

श्री राम नारायण वासुदेव
गोविन्द वैकुण्ठ मुकुन्द कृष्ण।
श्री केशवाऽनन्त नृसिंव्ह विष्णो
मां त्राहि संसार भुजङ्ग दष्टम्॥

सत्यकी—

अप्रमेयं हरे विष्णो
कृष्ण दामोदरा ऽच्युत ।
गोविन्दा नन्त सर्वेश
वासुदेव नमोस्तुते ॥

भीष्म—

विपरीतेषु कालेषु
परिक्षीणेषु बन्धुषु ।
त्राहिमां कृपया कृष्ण
शरणा गत वत्सल ॥

द्रोणाचार्य—

ये ये हताश्चक्र धरेण दैत्या
स्त्रै लोक्य नाथेन जनार्दनेन ।
ते ते गता विष्णु पुरो नरेन्द्र
क्रोधोऽपि देवस्य वरेण तुल्यः ॥

गौतम—

गो कोटि दानं ग्रहणेषु काशी
प्रयाग गङ्गा युत कल्प वासः ।
यज्ञा युतं मेरु सुवर्ण दानं
गोविन्द नाम स्मरणेन तुल्यम् ॥

अग्नि—

गोविन्देति सदा स्नानं
गोविन्देति सदा जयः ।
गोविन्देति सदा ध्यानं
सदा गोविन्द कीर्तनम् ॥

महादेव—

शरीरे जर्ज्जरी भूते
व्याधि ग्रस्ते कलेवरे ।
औषधं जान्हवी तोयं
वैद्यो नारायणो हरिः ॥

गङ्गा गीता च गायत्री
गोविन्दो गरुड़ ध्वजः ।
गकारैः पञ्चभिर्युक्तः
पुनर्जन्म न विद्यते ॥

गीतां यः पठते नित्यं
श्लोकार्धं श्लोक मेव वा ।
मुच्यते सर्व पापेभ्यो
विष्णु लोकं सगच्छति ॥

नमः समस्त भूताना मादि भूताय भू भृते ।
अनेक रूप रूपाय विष्णवे प्रभ विष्णवे ॥

भूः पादौ यस्य नाभिर्वियद सुर निलश्चंद्र सूर्यौं च नेत्रे ।
कर्णावा शाः शिरोधौर्मुख मपि दहनो यस्य वास्तेयमब्धिः ॥
अन्तस्थं यस्य विश्वं सुर नर खग भो भोगि गंधर्व दैत्यै ।
श्चित्रं रं रम्यं तेतं त्रिभुवन वपुशं विष्णु मीशं नमामि ॥

पहली आरती—

पुष्प की माला, कालीनाग नाथ लाये कृष्ण गोपाला ॥

दूसरी आरती—

देवकीनंदन, भक्त उबारन कंस निकंदन ॥

तीसरी आरती—

त्रिभुवन मोहै, गरुड़ सिंहासन राजा रामचन्द्र सोहै ॥

चौथी आरती—

चहुँदिशि पूजा, अलख निरंजन स्वामी और न दूजा ॥

पंचम आरती—

लक्ष्मन भ्राता, आरती करत कौशल्या माता ॥

षष्ठी आरती—

कीजे ऐसी, ध्रुव प्रह्लाद विभीषण जैसी ॥

सप्तम आरती—

रामजी को भावै, जो रामजी की आरती गावै
बस वैकुण्ठ परमपद पावै ॥

साधु सन्त भक्ति होवै प्रजा अनुरक्ति होवै,
रमा रानी सहित रमेश रमते रहें।
भीति में बनाये चित्रपट के समान तव,
विपुल विरोधियों के दल बनते रहें॥
आपके प्रभाकर प्रतापसिंह नाद सुनि,
वैरिदल जम्बुक समान ढरते रहें।
पूर्ण सब काम नाम यश भरपूरि होवै,
हरि की प्रसन्नता से यम डरते रहें॥

॥ गीत ॥

नर मूढ़ क्यों भुलाया, दिल में करो विचारा।
चिरकाल नहीं है, सुत बाँधवा सहारा ॥टेक॥
घृत डालने से जोती, कबहूँ न शान्त होती।
तृष्णा विशेष बढ़ती, भोगादि है पसारा॥
तेरा शरीर झड़ता, जैसे कपूर उड़ता।
किमि मोह सिन्धु पड़ता, जल्दी गहो किनारा॥
आनन्द जाहि माना, उसका न मर्म जाना।
मृगनीर के समाना, सब झूँठ ही पसारा॥
जो विश्व का अधारा, अरु रामरूप प्यारा।
उसका करो विचारा, दुख दूर हो तुम्हारा॥

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

॥ दोहा ॥

नीच निचाई न तजै, साधन हू के संग।
तुलसी चंदन विटप बसि, बिन विष भौ न भुजंग ॥१॥

आसन दृढ़ आहार दृढ़, सुमति ज्ञान दृढ़ होय।
तुलसी विना उपासना, विन दूलह की जोय ॥२॥

तन सुखाय पिंजर करै, धरै रैन दिन ध्यान।
तुलसी मिटै न वासना, बिना विचारे ज्ञान ॥३॥

आवत ही हरषै नहीं, नैननि नहीं सनेह।
तुलसी तहाँ न जाइये, कंचन बरषै मेह ॥४॥

हरष उठै आदर करै, आवत जान अतीत।
तुलसी तब हीं जानिये, परमेश्वर सों प्रीत ॥५॥

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

॥ दोहा ॥

नर जन्म उसका व्यर्थ है, जो प्रेम का भूखा नहीं ।
जो प्रेम का करता निरादर, सुख कभी पाता नहीं ॥

द्वै अर्जुन द्वे पवन सुत द्वे शिव सुत प्रिय राम ।
अस्तिक गङ्गा गरुड़ गिरिजा गुरु हरिनाम ॥

शयन समय सुमिरण करे पदम् नार नर कोय ।
अग्नि चौरदा स्वप्न भये ताको कबहु न होय ॥

श्री १०८ दण्डी स्वामी जगदीशानन्द सरस्वती कृत—
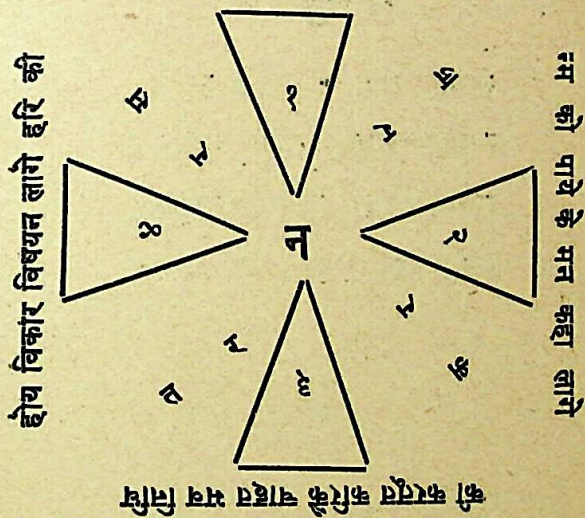
❀ स्तुति ❀

त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव सर्वं मम देव देव॥

मुद्रक—मनोहर प्रेस, भैरोनाथ, बनारस।